रामलिंग

कवि एवं पैगम्बर

राष्ट्रीय जीवन-चरित माला

रामलिंग

कवि एवं पैगम्बर

लेखक
पुरसु बालकृष्णन

अनुवाद
सुमति अय्यर

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

सुब्रह्मण्य चंद्रशेखर के लिए :

जिन्होंने अपने अस्तित्व से
हमारे संसार को
विशिष्ट बना दिया।

अनुक्रमणिका

स्मृति

क्या यह सच है ?
कि रामलिंग कभी
यहां रहे,
यहीं, इसी गली में
चलते रहे थे,
इसी मद्रास की
गली में,
जहां आज मैं खड़ा हूं !

क्या यह सच है ?
वे कभी कंदस्वामी मंदिर
में भटकते रहे
आज, जहां भीड़ है,
बूथों से अटी,
चटाइयों और आमों से
खचाखच भरी है
यह जगह !

क्या यह सच है,
कि ईश्वर के
प्रकाश की यह
पावन किरण,
सात कुंए के
वीरस्वामी पिल्लै गली में
कभी

चमकी थी
और अक्सर वे
तिरुवोत्रियूर तक
समाधि लगाने
यहां से
जाया करते थे ?

ओह ! तो बुद्ध यहीं थे
यहीं, इसी मद्रास में,
काशी में नहीं,
मरुदूर में थे वे,
कपिलवस्तु में नहीं।
प्रकाश के वे पुत्र थे
गीत के वरद पुत्र,
यह कल की बात
लगती है
पर वे यहां थे,
सौ वर्ष पूर्व
एक गतिशील ज्वाला-पुंज से
वे,
प्रकाशित करते रहे
प्रत्येक उस कोने को
जो आज भी
दैदीप्यमान है
उस प्रकाश से !

आभार

मैं ऊरन अडिगल का ऋणी हूँ, जिनकी महान तमिल कृति 'रामलिंग अडिगल वरलारु' (संत रामलिंग का जीवन, समरस सन्मार्ग आराय्यची निलयम, समयपुरम व वडलूर द्वारा 1971 में प्रकाशित) को इस पुस्तक के लेखन का आधार बनाया है।

रामलिंग की जिन दो कृतियों का मैंने उपयोग किया है, वे हैं—समरस शुद्ध सन्मार्ग संगम, 36 स्वामी पिल्लै स्ट्रीट, चूलै, मद्रास द्वारा 1932 में प्रकाशित 'तिरुअट्टपा' के दोनों भाग।

तमिल से किये गये अनुवाद मेरे अपने हैं। संस्कृत के अनुवाद, जिनमें आभारोक्ति नहीं दी गयी है, वे मेरे हैं।

पुरसु बालकृष्णन

1

उनका समय

भारत का वह समय, जब चिदम्बरम रामलिंग स्वामिगल का जन्म हुआ, राजनीतिक जागृति एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान का समय था। दक्षिण भारत के मरुदूर गांव में सन् 1823 में जब उनका जन्म हुआ, बंगाल में राजा राममोहन राय अपने उनचासवें वर्ष की आयु में सक्रिय थे और पांच वर्ष बाद ब्रह्म समाज की स्थापना करने की तैयारी में थे। देवेन्द्रनाथ ठाकुर, जो राय के दूसरे उत्तराधिकारी थे, केवल छह वर्ष के थे। दयानंद सरस्वती, जिन्होंने सन् 1875 में (रामलिंग की मृत्यु के एक वर्ष बाद) मुंबई में आर्य समाज की स्थापना की थी, का जन्म रामलिंग के जन्म के एक वर्ष बाद हुआ था। महादेव गोविन्द रानाडे, प्रार्थना समाज के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुरुष का जन्म रामलिंग के उन्नीसवें वर्ष में हुआ। प्रार्थना समाज की स्थापना मुंबई में सन् 1867 में की गयी। रामलिंग जब तेरह वर्ष के थे, तब बंगाल के कमारपुकुर गांव में रामकृष्ण परमहंस का जन्म हुआ। सन् 1875 में (रामलिंग की मृत्यु के एक वर्ष बाद) न्यूयार्क में मैडम ब्लावत्सकी तथा कर्नल ओलकॉट ने थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना की। सन् 1879 में वे मुंबई आये, फिर 1882 में मद्रास आ गये। यह उचित ही था कि थियोसोफिकल सोसाइटी (जिसकी स्थापना के विषय में जनवरी सन् 1874 को अपनी मृत्यु के एक दिन पूर्व रामलिंग ने भविष्यवाणी की थी) का मुख्यालय मद्रास स्थानांतरित किया गया। वही मद्रास जहां रामलिंग के कुल इक्यावन वर्ष के जीवन-काल के प्रारंभिक चौंतीस वर्ष गुजरे हैं। यह और भी समुचित इसलिए है, कि सन् 1865 में वल्लूर में रामलिंग ने 'समरस वेद सन्मार्ग संगम' की स्थापना की थी। सन् 1872 में सभी धार्मिक अर्थों और समुदायों से पृथक करने के उद्देश्य से इसको नया नाम दिया—'समरस शुद्ध सन्मार्ग सत्य संगम'। इसके सिद्धांत हूबहू वही थे, जो दस वर्ष बाद न्यूयार्क की थियोसोफिकल सोसाइटी के बने।

रामलिंग को कवि व उपदेशक के रूप में प्रस्तुत करते हुए, मैं न केवल उनके जीवन की चर्चा करूंगा, बल्कि अपनी तार्किकता को बनाये रखते हुए उन किंवदंतियों की भी चर्चा करूंगा जिनमें उनके जीवन की घटनाएं कैद हैं। एक

दृष्टि से देखा जाये तो किंवदंतियां जीवन से भी अधिक सच हैं, क्योंकि वे जन-मानस पर उनके प्रभाव की प्रतिक्रिया-स्वरूप जनमी हैं। इस प्रकार वे एक मनुष्य के जीवन के काव्यमय सत्य का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो किसी नग्न सत्य की तुलना में कहीं अधिक सुंदर है। यह एक अंतर्विरोध है कि किंवदंतियां हमें सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति के निकट ले जाती हैं, और जीवन से भी अधिक ऊर्जा के साथ यह काम करती हैं।

2

उनका जन्म

दक्षिण भारत के तमिलनाडु में चिदम्बरम जिले के उत्तर-पश्चिम में पंद्रह किलोमीटर की दूरी पर स्थित मरुदूर नामक गांव में पांच अक्तूबर सन् 1823 को रामलिंग का जन्म हुआ। पिता रामय्या पिल्लै, जो शैव वेलाल समुदाय के थे, गांव के मुंशी और अध्यापक थे। उनकी मां चिन्नम्मै, मद्रास के पास चिंगलपेट जिले के पोन्नेरी अंचल के चिन्नकवनम गांव की थीं। रामय्या पिल्लै की पांच पत्नियां थीं। पर उनसे कोई संतान नहीं थी। चिन्नम्मै उनकी छठी पत्नी थीं और उनके दो पुत्र हुए—सभापति और परशुरामन तथा दो पुत्रियां हुईं—उज्जामलै और सुंदरांबाल। रामलिंग पांचवी संतान थे। जैसा कि संतों और उपदेशकों के विषय में सामान्य रूप से कथाएं प्रचलित होती हैं, किंवदंति है कि उनके जन्म और उसके उद्देश्य के विषय में एक शैव तपस्वी ने भविष्यवाणी की थी। यह भी कहा जाता है कि शिव स्वयं तपस्वी के रूप में रामय्या के घर आये तथा घर में कुछ दूर आगे चलकर अंतर्ध्यान हो गये।

रामलिंग अभी छह माह के ही थे कि उनके पिता की मृत्यु हो गयी और उनकी माता अपने गांव पोन्नेरी लौट आयीं। यह कहा जाता है कि जब वे पांच माह के थे एक बार उनके पिता उन्हें चिदम्बरम ले गये। वहां शिशु रामलिंग को 'चिदम्बर रहस्य' के दर्शन हुए। परदे के पीछे के इस खाली स्थान को निराकार ब्रह्म का प्रतीक माना जाता है। संभवत: जब रामलिंग को चिदम्बरम ले जाया गया था, वे लगभग छह माह के रहे होंगे, यह लेखक की मान्यता है। अपनी कविता में, जहां वे अपने बाल्यकाल के अनुभवों की चर्चा करते हैं, रामलिंग केवल मां को याद करते हैं, पिता को नहीं।

> उस शैशव काल में,
> जब मैं
> मां को ले
> आया था, पास तेरे
> चिदम्बरम में,

वह परदा उठा,
उस शून्य स्थान के पीछे
तूने दिया वह
रहस्य-दर्शन;
हे प्रभु, मेरे सुख,
तुमने मुझे,
योग्य बनाया तुरंत
बीज बोने के पूर्व ही,
हो गया परिपक्व मैं,
फल की हुई प्राप्ति मुझे।

3

शैशव काल

एक वर्ष के अंदर ही (सन् 1824) रामलिंग की मां अपने ज्येष्ठ पुत्र सभापति के पास मद्रास आ गयीं। वे नामी विद्वान थे और धार्मिक उपदेशों से जीवन-यापन किया करते थे। वे वर्तमान मद्रास के डाक मंडल एक में स्थित 'सेवन वैल्स' के 39 वीर स्वामी पिल्लै स्ट्रीट में रहते थे।

अपने शैशव काल के अनुभवों के बारे में कवि कहते हैं:

एक रात जब मैं,
बरामदे में सोते हुए,
ओसारे से
गिर पड़ा था नीचे,
लुढ़कते हुए,
एक बालक के रूप में,
तुमने
संभाल लिया था,
बीच में मुझे,
और
स्नेह-भरे हाथों से
भूमि पर
धीमे से लिटा दिया था।

जब रामलिंग पांच वर्ष के हुए, उनके भाई सभापति ने उन्हें पढ़ाना प्रारंभ किया। पर रामलिंग उदासीन रहे और अपना अधिकांश समय दिवास्वप्न में गुजारते। वे आवारगी करते, गलियों में भटकते और कंदस्वामी मंदिर के प्रांगण में मटरगश्ती करते। जब सभापति पिल्लै उन पर अंकुश नहीं लगा सके, उन्होंने रामलिंग को पढ़ाने का उत्तरदायित्व कांचीपुरम के तमिल पंडित सभापति मुदलियार को सौंप दिया। ये स्वयं उनके गुरु थे। पर पंडित का भी कोई विशेष

प्रभाव नहीं पड़ा। यह देखकर कि यह बालक अपनी बातों और अपने गीतों से श्रोताओं को आकर्षित कर रहा है, उन्होंने अपना प्रयास त्याग दिया। सभापति पिल्लै का धैर्य चुक गया और उन्होंने अपनी पत्नी पार्वती को कड़ी हिदायत दी कि वे रामलिंग को खाने और पहनने के लिए कुछ न दें। फिर भी रामलिंग पिछले दरवाजे से चुपचाप घर आते, जब सभापति पिल्लै सो रहे होते। पार्वती उन्हें प्यार से खाना खिलाती। इसी तरह प्यार से समझाते हुए अंत में उन्हें राजी कर लिया कि वे भाई को खुश रखेंगे और अपनी पढ़ाई को भी गंभीरता से लेंगे। उन्होंने आश्वासन तो दिया, पर दूसरी मंजिल में एक कमरा देने का भी अनुरोध किया, जहां वे अपनी पढ़ाई स्वयं कर सकें। उनका अनुरोध मान लिया गया। भटकना छोड़ वे घर लौट आये और भाई की खुशी का ठिकाना नहीं रहा, जब उन्होंने देखा कि उसके बाद वे घर से कभी नहीं निकले।

शायद इन्हीं दिनों वे कुछ समय के लिए बाल तपस्वी हो गये थे। एक कविता में वे ईश्वर से कहते हैं :

हे प्रभो,
खेलने-कूदने के दिनों में,
तुम जानते हो,
पर मुझे याद करने दो,
मैंने एक सखा से
कहा था,
मैं इस विश्व की
परवाह नहीं करता,
क्या तुम करते हो ?
उसने स्वीकारा।
और हमने विश्व की
ओर से
मोड़ लिया मुख
और घूमते रहे।
पर तुम, तुम्हारी गरिमा ने
हमें बुलाया फिर,
मैं आभारी हूं
तुम्हारा,
हे प्रभो, हे मां !

यह बात ध्यान देने योग्य है कि वे ईश्वर को इस कविता में मां के रूप में संबोधित करते हैं। हो सकता है, वे अपनी भाभी पार्वती को याद कर रहे हों, जिसने उनको मां का-सा स्नेह दिया था, उन्हें भोजन दिया था और लौटने का अनुरोध किया था। बाद के वर्षों में भूख की समस्या के प्रति उनकी चिंता का कारण इस अनुभव में निहित है।

4

उत्तर-बाल्यकाल

माई को पता ही नहीं लगा कि बालक रामलिंग बंद कमरे के अंदर दिन भर क्या करता रहता है। उनके लिए तो यही बहुत था कि रामलिंग घर पर बना रहता है। रामलिंग ने दीवार के सहारे एक दर्पण टिका दिया और उसके सामने एक दिया जला दिया। इस पर ध्यान लगाते हुए उन्होंने समाधि लगाना प्रारंभ किया। इन्हीं उपकरणों का प्रयोग उन्होंने वर्षों बाद वडलूर में बनाये गये 'सत्य मदिर' में भी किया। दिये की लौ में उन्होंने विश्वात्मा की कल्पना की और वह दर्पण, जिसमें लौ की प्रतिच्छाया पड़ती है, स्वयं मनुष्य का प्रतीक बन गया। मनुष्य अपने मन को दर्पण की तरह स्वच्छ रखने का प्रयास करता है और यह तभी संभव है जब परमात्मा का प्रतिबिंब मनुष्य के मन पर पड़े। रामलिंग के अनुसार इस प्रकार विश्वात्मा की अनुभूति होती है। इसके साथ ही विश्व-प्रेम तथा सभी जीव-जंतुओं के प्रति प्रेमभाव की जागृति होती है। क्योंकि मनुष्य जानता है कि यह वही प्रकाश है, जो सभी जीव-जंतुओं में न्यूनाधिक मात्रा में, उनके विकास के अनुसार व्याप्त है।

इसी उम्र में उन्होंने गीतों की संरचना प्रारंभ कर दी थी। शायद इससे कुछ पहले ही, जैसा कि वे स्वयं ईश्वर से कहते हैं :

> मेरा छोटा-सा शरीर,
> मेरी अल्पबुद्धि,
> और अपने नन्हें पैरों
> से सड़क की धूल छानते हुए,
> मैंने गीत बनाये,
> तुम अरूप होकर
> उनमें समाये,
> और गाने को
> विवश किया।

कहा जाता है कि (स्वयं रामलिंग ने एक गीत में लिखा है) नौ वर्ष की

उम्र में ही उन्होंने दर्पण में तणिगै के भगवान मुरुगन (कार्तिकेय) के दर्शन किये थे। इसी कमरे में उन्होंने बगैर किसी गुरु के अपना आत्म-ज्ञान स्वयं प्राप्त किया। इसके लिए वे अपने कई गीतों के माध्यम से ईश्वर को धन्यवाद देते हैं। उदाहरण के लिए :

बिना किसी दीक्षा के
वह ज्ञान,
गरिमा की वह आग
जो मेरे भीतर जगी।

पहला गीत, नौ वर्ष से भी कम उम्र में उन्होंने लिखा था। यह गीत कंदस्वामी मंदिर के मुरुगन या षण्मुख पर लिखा गया। यह इक्कीस गीतों का संकलन है, जिनमें निम्नांकित पंक्तियां आज भी तमिलनाडु में गायी जाती हैं :

मुझे बांध लो,
उन मुक्त आत्माओं के साथ
जो तुम्हारे पास हैं,
मेरी रक्षा करो
उनसे, जो शब्दों के पीछे
छिपे हैं।
मैं सदैव तुम्हारी
महिमा के गीत
गाता रहूं,
मुझे इस मिथ्या
और द्वेष से निकाल कर
आगे ले जाओ,
इन पंथों से
आगे अन्वेषण
करूं मैं,
स्त्रियों के प्रति
लोभ से मुक्त हो सकूं मैं,
मद्रास-से उदात्त
नगर के
मंदिर में

स्थित स्कंद
कभी न भूलूं मैं
तुझे,
हे परम कृपालु षण्मुख !
मुझे दो वरदान
बुद्धि, स्वास्थ्य और गरिमा का,
सदा रहूं तुझमें ही
मैं रमता !

5

नौ से बारह वर्ष के बीच

इस समय भाई सभापति ने उन्हें काम पर जबरन लगा दिया। एक दिन उन्हें उस लड़की का कार्यभार संभालना पड़ा, जो सभापति के वक्तव्यों से भोज-पत्रों पर लिखी पांडुलिपियां पढ़ा करती थी। रामलिंग ने उन्हें इतने मनोयोग से पढ़ा कि श्रोतागण आग्रह करने लगे कि भविष्य में पांडुलिपियों का पाठ वे ही किया करें।

एक दिन सभापति को सोमू चेट्टियार के घर प्रवचन देने जाना था। पर वे बुखार में घिर गये। उन्होंने रामलिंग को सूचना देने भेज दिया। जब रामलिंग वहाँ पहुँचे, श्रोतागण पहले ही एकत्रित हो चुके थे। उनमें से एक ने सुझाव दिया कि रामलिंग अपने भाई के स्थान पर प्रवचन दें। रामलिंग ने प्रवचन दिया। विषय था, "तिरुज्ञान संबंदर की जीवनी", जो एक वरद संत-गायक के रूप में जाने जाते हैं। रामलिंग ने इन्हें ही अपना आदर्श माना था। रामलिंग टिप्पणी और भोज-पत्रों की सहायता लिये बिना बोलते रहे। उनकी प्रेरक वाग्मिता बह निकली। यह उनका पहला वक्तव्य था जो बन्द कमरे से निकलने के बाद उन्होंने दिया। उन्होंने अपने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। उसके बाद, श्रोताओं का आग्रह रहा कि रामलिंग ही प्रवचन दिया करें। सभापति ने इस बात को विनम्र-तापूर्वक स्वीकार कर लिया और किसी अन्य स्थान पर श्रोताओं की तलाश में निकल गये।

नौ वर्षकी अवस्था (1832) में ही रामलिंग को दैवी कृपा प्राप्त हो गयी थी। अपने गीतों में एक स्थान पर वे स्वयं कहते हैं :

मानव की आवश्यकताओं
और विशेषताओं
के,
विवेकी निर्वाहक,
हे प्रकाशित ज्योतिपुंज !
अखिल विश्व के

केन्द्रीभूत ज्योतिपुंज !
जीवन के पथ-प्रदर्शक !
नौ वर्ष की आयु में,
मुझ पर
आधिपत्य करने वाले !
तूने अपने राज्य में
मुझे अपनाया,
अपने को जानने
के लिए,
मैंने खो दीं
अपनी इच्छाएं
तुममें।

इस दैवी कृपा के बावजूद उनके आध्यात्मिक संघर्षों का कोई हल नहीं निकल पाया। बारह वर्ष की उम्र से इसकी शुरुआत हुई :

बारह वर्ष की
आयु से
मेरी प्रार्थना
हे प्रभु,
पर्वत को
पिघलाने के लिए
पर्याप्त है।
प्रभो, इस
नराधम की
प्रार्थना
बारह वर्ष से
अब तक की
याचना
लोहे को
गला सकती है !

उन्होंने सबसे पहले अपने भोजन की जरूरतों को कम करना प्रारंभ किया। वे ईश्वर से कहते हैं :

मुझमें स्थित

हे प्रभो,
बचपन से
ही,
सच कहूँ, मैं
खाने की आवश्यकता
को
घृणास्पद मानता रहा।
मेरी एकमात्र
इच्छा थी,
तुम्हारी कृपा को
प्राप्त करना।

और भी—

मां की
टेढ़ी भृकुटी से
सहम कर ही मुझे
अक्सर
खाना पड़ा है।
उन अपनों को
आहत न करने
की इच्छा से
जो मुझे प्यार करते रहे
मैं खाता था
वरना
मैं खाते हुए
भयभीत रहता था।
तुम जानते हो प्रभु!

जब खाता था
मैं मिष्ठान्न
घबराता
कि मिठास
जान लेने के बाद
मैं और नयी टीस

को लूंगा जान !
इसलिए मेरी देवी मां,
मैंने व्रत किये,
जब मित्रों ने
मुझे भोजन दिया
मैंने अपने को
तेरे हवाले किया,
यही करता रहा प्रार्थना
कि यह भोजन
मेरे स्वास्थ्य का
कारण न बने।
खाता रहा जो उन्होंने दिया
इस शरीर से
मोह नहीं, प्रभो !
जब भूख से
तिलमिलाकर खाता रहा
घृणा हुई
अपने ही से,
अब भी घृणा है भोजन से
इच्छा नहीं कि यह देह पनपे,
मैं रहूं दुर्बल
यही है इच्छा मेरी
प्रभो, यही मांगता तुझसे सदा।

धनोपार्जन की भी कोई विशेष इच्छा उनकी नहीं रही। उन्हें व्याख्यानों के लिए जो भी मिलता उसे वे कुएं में, तालाबों में या झील में फेंक दिया करते। कभी देने वाले को ही लौटा देते। वे अपने एक गीत में कहते हैं :

मैं चाहता हूं केवल अनुकंपा
धन की न रही कामना कभी
न अब, न बचपन में
तुम जानते हो,
लौटा दिया उसे दाता को
मैंने उसे दिया है
फेंके कहीं भी।

मेरे अंतर स्थित प्रभो !
मैं तो केवल
तुम्हारी अपार कृपा
का याचक हूं,
धन-संग्रह नहीं
चाहता मैं
जो कमाया मैंने
सब फेंक दिया
तालाब, कुंए में,
हे मेरी देवी मां !
मैं संचय करता हूं,
तुम्हारी दी हुई
उन विशेषताओं को
जो कभी समाप्त नहीं होतीं,
न देने से,
न लेने से ।
ओह, तुम्हारी अपार करुणा
मैंने देखी है,
पर कह नहीं पाता ।

उनके प्रशंसकों को जब यह मालूम हुआ कि वे धन को यूं कुंए या तालाब में फेंक आते हैं तब उन्होंने उनके भाई को धन देना प्रारंभ किया ।

इस तरह अपनी अल्प आयु में ही उन्होंने विश्वास एवं धारणा के सभी बंधनों को तोड़ डाला । ईश्वर की परिकल्पना प्रदीप्त और पवित्र ज्ञान के रूप में वे करते रहे। अंतिम वर्षों में, जिस साहचर्य की स्थापना उन्होंने की, उसकी घोषणा करते हुए वे कहते हैं :

प्रभु, आभारी हूं, किस तरह तुमने मेरे बचपन में मुझे जाति-भेद, कर्मकांड और पाखंडों से दूर रखा, उन्हें समझने का अवसर दिया; और धीरे-धीरे जैसे वर्ष गुजरते रहे, मेरे भीतर ज्ञान का प्रकाश फैलाया और मुझे लक्ष्य की ओर तेजी से अग्रसर किया ।

6

गीत और चमत्कार

बारह वर्ष की आयु में, जब रामलिंग का आध्यात्मिक संघर्ष प्रारंभ हुआ, वे मद्रास से उत्तर में दस किलोमीटर दूर तिरुवोत्तियूर में स्थित भगवान् त्यागराज (शिव के वैरागी स्वरूप) तथा देवी वडिवुडै अम्मै की आराधना के लिए जाने लगे। यह मंदिर पुरातन समय से चर्चित है तथा शैव संप्रदाय के चार महान उपदेशकों में से तीन उपदेशकों—संबंदर, अप्पर तथा सुंदरर ने अपने गीतों में इसकी चर्चा की है। इन उपदेशकों का समय छठी व सातवीं शताब्दी रहा है।

मद्रास में अपने निवास के तेईस वर्षों में, रामलिंग शहर से अक्सर निकल पड़ते और तिरुवोत्तियूर प्रतिदिन पैदल ही निकलते। मंदिर के देवता भगवान त्यागराज की महिमा के गीत और कविताएं रचते और गाते हुए जाते। थकने पर वहां खुले में सोते हुए रात बिताते। वे तिरुत्तणिगै (मुरुगन का मंदिर), तिरुवलिडयम तथा तिरुमुल्लैवयल भी जाते। यह बात ध्यान देने योग्य है कि वे तिरुवल्लूर और तिरुकण्णमंगै भी गये, जो भगवान विष्णु के मंदिर माने जाते हैं और इन स्थानों के देवता पर कई गीत रच डाले।

उस समय तिरुवोत्तियूर समुद्र के तट पर एक सुंदर स्थान था। वहां नंदी का एक मंदिर था, जो आज खंडहर हो गया है। एक सोता भी था जो आज सूख गया है। अपने एक प्रचलित गीत में वे इस स्थान की चर्चा करते हैं:

ग्रीष्म की दोपहरी में
सुख देने
वाला वृक्ष;
वह ठंडी घनी छाया,
छाया में लगे वे फल !
सोते का वह स्वच्छ
बहता जल,
और उसकी मिठास

उन फूलों की महक
तट की वह ठंडी बयार,
और उसका
नरम स्पर्श
मेरे प्रभु, जगत-सृष्टा
इन पुष्पों के साथ
मुझसे परिणय-सूत्र में
बंधे मेरे नाथ !
इन सुखों का
कैसे करूं वर्णन !
मेरे इन गीत-
पुष्पों को
स्वीकार करो, हे नाथ !

उक्त गीत के विषय में यह कहा जा सकता है कि इसमें पांचों इंद्रियों का सुख निहित है, ईश्वर को प्रकृति के विभिन्न पहलुओं में देखने का प्रयास है, अंत में संवेदनात्मक चरम सीमा के आवेग में ईश्वर को पति के रूप में संबोधित किया गया है। यह कविता राबर्ट ब्राउनिंग के 'वाइल्ड ज्वायज़ ऑफ लिविंग' की "सॉल" कविता का स्मरण करवाती है। अंतर सिर्फ इतना है कि रामलिंग के गीत में आध्यात्मिक मिठास है तो ब्राउनिंग की कविता में संवेदनात्मक अनुगूंज !

कहा जाता है कि इस अवधि में ईश्वर के साथ रामलिंग को कुछ रहस्यपूर्ण अनुभव एवं संपर्क प्राप्त हुए। इसका वर्णन वे अपनी विशिष्ट शैली में करते हैं।

एक दिन देर रात में वे तिरुवोत्तियूर से अपने भाई के घर लौटे। वे अपने सोते हुए भाई और भाभी को उठाना नहीं चाहते थे। हालांकि उन्होंने उस रात कुछ नहीं खाया था, वे बहुत थके हुए और भूखे भी थे, वे घर के सामने बरामदे में खुले चबूतरे पर सो गये। जल्दी ही उन्हें जगाया गया। उनके पास उनकी भाभी भरी हुई थाली लिये खड़ी थीं। उन्होंने भोजन किया और सोने चले गये। कुछ देर बाद वे फिर जगाये गये। इस बार उनकी भाभी उन्हें खाने के लिए भीतर बुला रही थीं। बाद में पता लगा कि पहली बार उन्हें किसी शक्ति ने जगाया था। इस बात की पुष्टि देवी वडिकुंडे अम्मै के दूसरे दर्शन से हुई। हाथ में पीतल की थाली लिये देवी ने पुनः दर्शन दिये। दर्शन हुए और एकदम विलीन हो गयीं। रामलिंग ने तीन काव्यांशों में इसका जिक्र किया है। उनमें एक काव्यांश

यूं है :

उस रात मैं सोया था
ठंडे बरामदे में,
थका, भूखा;
तू मेरी मां,
जीवन-स्रोत !
आयी मेरे समीप और
पूछा,
ओत्रियूर[1] से लौटकर
थक गये हो ?
और
अपने वरद हाथों से
अक्षय पात्र से
तूने मुझे आशीर्वाद दिया ।
और दिया भोजन मुझे
हे मां,
तू समझती है मेरा
क्लेश,
यूं कि जैसे वह तेरा हो ।
हे नृत्य-सम्राट्[2] !
मेरी इन हकलाती
स्तुतियों को स्वीकार करो ।

कहा जाता है कि एक बार मंदिर के देवता त्यागराज ने स्वयं उन्हें भोजन परोसा था। एक दिन आदतन बगैर कुछ खाये-पिये रामलिंग मंदिर के प्रांगण में सो रहे थे, तभी मंदिर के पुजारी ने उन्हें जगाया और खिलाया। अगली सुबह यह पता लगा कि पुजारी जी तो दो दिन पूर्व ही तिरुवोत्तियूर से बाहर गये हुए थे।

इस दौरान, जैसा कि उनके जीवनकाल के दौरान होता रहा है, कई चमत्कार हुए हैं। हम इनमें से केवल एक उदाहरण देंगे। तिरुवोत्तियूर में वे

1. ओत्रियूर "तिरिओत्रियूर" का संक्षिप्त नाम है। "तिरु" का अर्थ है पवित्र।
2. पाठक को कोई भ्रम न हो, ईश्वर को मां के रूप जहां चित्रित किया गया है, वहीं नृत्य-सम्राट् भी कहा है। हिन्दू भक्त ईश्वर से कई संबंध जोड़ता है। या तो अवसर के अनुसार उनका प्रयोग करता है, या कभी अपनी इच्छानुसार।

पट्टिनाट्टर के मंदिर जाया करते और वहां कुछ देर विश्राम करते। एक दिन जब वे विश्राम कर रहे थे, एक बूढ़ी महिला ने जो मंदिर की सेवा में अपने अंतिम दिन बिता रही थी, उनसे अनुरोध किया कि वे किसी चमत्कार के माध्यम से उसे पुनः विश्वास दिलायें। रामलिंग ने समुद्र-तट से मुट्ठी-भर रेत ली और इसे उसके हाथ में दिया। उन्होंने उससे कहा, वह हथेली पहले बन्द कर ले, फिर खोल दे। उसने जब ऐसा किया तो उसने देखा कि उसके हाथ में रेत की जगह ढेरों शिव-लिंग थे। यहां यह ध्यान रहे कि प्रचलित मान्यता के अनुसार शैव संप्रदाय के प्रमुख संत पट्टिनाट्टर जो कि ग्यारहवीं शती के हैं, तिरुवोत्तियूर के लिंग में ही अंतर्निहित हो गये थे।

एकाध अवसर को छोड़कर जब किसी शिष्य पर अनुग्रह करना होता, या किसी का आग्रह होता, रामलिंग इस तरह के चमत्कार-प्रदर्शन के लिए मना करते। कहते, इस तरह के प्रदर्शनों से किसी की सच्ची आध्यात्मिक उपलब्धियों पर प्रभाव पड़ता है।

दैवी अनुग्रह तथा चमत्कार की घटनाओं के कारण उनकी प्रसिद्धि फैल गयी। जबकि उनकी निर्मलता, ईमानदारी, विनम्रता और वाक्पटुता ने प्रसिद्ध लोगों को उनके प्रति आकर्षित किया। इनमें तोझुवूर के वेलायुद्ध मुदलियार भी एक थे, जो सन् 1849 में उनके शिष्य बने। रामलिंग की मृत्यु के बाद वे मद्रास प्रेसीडेंसी कालेज में तमिल पंडित बने। बाद में अन्य लोगों के साथ उन्होंने अपने गुरु की रचनाओं को संकलित एवं प्रकाशित किया।

7

उनका विवाह

भगवान बुद्ध (568-488 ई० पू०), रामकृष्ण (1836-1886 ई०) तथा रमण महर्षि (1879-1950 ई०) की तरह रामलिंग भी जीवन-मुक्त हो गये थे। जन्म से ही भौतिक सुविधाओं, स्त्री और संपत्ति का मोह उन्हें नहीं रहा। एक गीत में वे ईश्वर से कहते हैं :

यदि तुम मुझे पुनः लपेटना चाहते हो,
किसी स्त्री की बांहों में,
तो सुन लो
मेरी बात,
इच्छा नहीं रही मेरी कभी
मैं नहीं चाहता।
इससे सदैव बचाता रहा
अपने को,
और कहूं क्या अधिक मैं ?
मैं समर्पित हूं तुममें,
थिरकते ज्योतिपुंज जीवन के !

उनके मित्रों और सम्बन्धियों ने उनका विवाह निश्चित करना चाहा, वे नहीं माने। कहा जाता है कि एक संत के माध्यम से उन्हें मनाना चाहा, जिन्होंने जीवन के नियमित कर्तव्यों के प्रति उन्हें सचेत करना चाहा। गृहस्थ के रूप में उनके सामाजिक दायित्व का बोध कराया। अन्त में वे मान गये। कहा जाता है कि सन् 1850 में 27 वर्ष की आयु में उनका विवाह हुआ। उन दिनों यह विवाह की आयु नहीं मानी जाती थी। पर इस बात का कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। वधू उनकी बहन उण्णमलै अम्मै की पुत्री धनम्माल थी। विवाह के समय उनकी आयु का पता नहीं चलता। विवाह सम्पन्न हुआ। प्रश्न उठता है, वे माने ही क्यों ? कई गीतों में मां की तनी हुई भृकुटी से अपने भय का जिक्र वे करते हैं, शायद यही कारण रहा हो। वैवाहिक संस्कारों के अनुरूप वधू के गले

में उन्होंने मंगलसूत्र बांधा। अपनी प्रथम रात्रि में (अपनी प्रिय रचना) 'माणिक्क वाचहर' का 'तिरुवाचकम्' पढ़ते हुए बितायी। आगे भी कई रात्रियों तक यही होता रहा। अपनी कविता 'पिल्लै पेरुविण्णप्पम' (एक बेटे की याचना) में वे अपने ब्रह्मचर्य का उल्लेख करते हैं :

क्या यह मेरे पिछले कर्म थे
जो पीछा कर रहे थे ?
क्या वह तुम्हारी कृपा थी,
जिसने मेरी रक्षा की ?
मेरी कोई इच्छा नहीं,
फिर भी, वह स्त्री,
जिसे मैंने छुआ
हमारे हाथ मिले,
वह झुकी और मैंने उसे छुआ;
पर कोई संगम
नहीं था वहां।
तुम जानते हो, पिता मेरे
जब सोचता हूं इसे
लज्जा से गड़ जाता हूं।

वे माणिक्क वाचहर को श्रद्धांजलि देते हैं :

वह दिव्य आत्मा
एकाकार हुई ईश्वर में,
तुम्हारे गीतों में
एकाकार
मधुर और मधुर !
मैं गाता हूं
मेरी चेतना एकाकार है
मेरी आत्मा एकाकार है
मधुर-मधुर है गीत
तुम्हारा
गन्ने के रस-सा मधुर
मधुमिश्रित, फलों के रस से सिक्त,
दुग्ध धवल और मधुर गीत।

एक अन्य गीत में वे कहते हैं कि माणिक्क वाचहर के 'तिरुवाचकम्' की एक पंक्ति भी, उन्हें ईश्वर से जोड़ने के लिए पर्याप्त है ।

इसके बाद धनम्माल का उनके जीवन में कोई उल्लेख नहीं मिलता । उसके जीवन के बारे में कोई सूचना नहीं मिलती ।

8

संपादक, पुरालेखक और कवि

मद्रास में रामलिंग का जीवन साहित्यिक गतिविधियों का रहा। यहां उन्होंने प्रचुर मात्रा में गती और कविताएं लिखीं। 1835 तक पहले के बारह वर्षों को हम 'कन्दकोट्टम' (स्कंद का मंदिर) की अवधि कह सकते हैं, जब उन्होंने अपने को एक भक्त के रूप में जाना और भगवान कार्तिकेय की प्रशंसा में गीतों की रचना की। 1858 तक के अगले बाईस वर्षों को 'तिरुवोल्लियूर अवधि' कहा जा सकता है, जब उन्होंने अपने को भगवान त्यागराज (शिव का वैरागी स्वरूप) के भक्त के रूप में प्रतिष्ठित किया और उनकी स्तुति में गीतों की रचना की। उनके चारों ओर अगणित शिष्य, धर्मगुरु, मठाधीश, तमिल और संस्कृत के कवि तथा प्रकांड विद्वान, गांव और क्षेत्र के प्रमुख व्यक्ति, सरकारी अधिकारी, चर्चित व्यक्ति और अशिक्षित जनता—सभी इकट्ठे होने लगे। उनके लिए वे योग-विशेषज्ञ, आध्यात्मिक गुरु, कवि और विद्वान थे।

जीवन की इस अवधि में, उन्होंने बचपन में लिखी कुछ कविताओं को संपादित किया और दो गद्य रचनाएं लिखीं।

उनमें पहली संपादित रचना थी, संकंकण्णुडैय वल्लम्न की (1380-1474 ई०) 'ओज्झिविल ओडुक्कम' (आत्मज्ञान प्रवेशिका), जिसकी टीका तिरुप्पोरुर चिदम्बर स्वामिगल ने की थी। सन् 1851 में सभापति मुदलियार ने इसे प्रकाशित किया।

सभापति मुदलियार के अनुरोध पर अगली प्रकाशित कृति थी 'मनुमुरै कन्द वाचकम्' (न्याय कथा)। इसमें रामलिंग ने मनुचोषण महाराज द्वारा गाय को न्याय दिलाने की प्रचलित नीति-कथा को विस्तृत रूप में गद्य में प्रस्तुत किया है। यह कथा, सेक्किभार के तमिल महाकाव्य 'पेरियपुराणम्' में उद्धृत है। इसे सन् 1854 में धार्मिक शिक्षा समाज के लिए पालयम सुब्बराय चेट्टियार ने प्रकाशित करवाया।

इसी समय मद्रास में विद्वानों, पंडितों, अध्यापकों एवं प्रबुद्ध बुद्धिजीवियों के बीच एक विवाद उठ खड़ा हुआ कि चिंगलपेट, उत्तरी आरकाट और दक्षिणी आरकाट से मिलकर बने एक विशिष्ट क्षेत्र का नाम 'तोडै मंडलम' है अथवा

'तोंड मंडलम' । कुछ लोग स्पष्टीकरण के लिए रामलिंग के पास पहुंचे । प्रत्युत्तर में रामलिंग ने जो विश्लेषण प्रस्तुत किया वह इतना वजनी और निर्णयात्मक था कि तोंडमंडलम तुलुव वेलालर समाज के तमिल स्कूल के प्राध्यापक कोन्नूर अय्यासामी मुदलियार ने रामलिंग से अनुरोध किया कि वे इसे पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान करें । परिणामतः पडिक्कासन (सत्रहवीं शताब्दी) के 'तोंडमंडल शतकम्' (तोंडमंडलम पर सौ गीत) रामलिंग द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हुआ, जिसकी भूमिका में उनका स्पष्टीकरण वक्तव्य भी प्रकाशित हुआ था । इसका प्रकाशन सन् 1855 में अय्यासामी मुदलियार ने किया । यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह प्रकाशन निःशुल्क वितरण के लिए था । रामलिंग ने किसी भी तार्किक, खरे विद्वान, और पुरालेख-शास्त्री की तरह 'तोंडमंडलम' नाम के पक्ष में अंतिम निर्णय दिया । अपना प्रबन्ध उन्होंने निम्नांकित शब्दों में समाप्त किया :

> यदि अभी भी कुछ लोगों के मन की शंका दूर न हुई हो, तो मैं उनका ध्यान महाराज अतोंड हाप निर्मित मंदिर में खुदे शिलालेखों की ओर दिलाना चाहूंगा, जिसमें उन्होंने अपना नाम अतोंड के रूप में अंकित किया है । वे शंका-समाधान के लिए तिरुवलिदयम, तिरुमुल्लेवामिल तथा अन्य मन्दिरों में खुदे शिलालेखों को देख सकते हैं ।

यह भी उल्लेख करना होगा कि इन स्थानों पर मिले शिलालेखों में क्षेत्र का नाम 'तोंडमंडलम' दिया गया है ।

रामलिंग द्वारा संपादित तीसरी पुस्तक थी, 'चिन्मय दीपिकै' (आध्यात्मिकता का पथप्रदर्शक), जो वृद्धाचलम के कवि मुत्तैय्या स्वामिगल द्वारा लिखित है । इसका प्रकाशन सन् 1857 में मदुरै मुदलियार ने किया था ।

रामलिंग की दूसरी गद्य-कृति 'जीवकारुण्य ओभुक्कम' (अहिंसा धर्म) उनकी मृत्यु के बाद ही प्रकाशित हुई ।

रामलिंग की कोई इच्छा नहीं थी और इसीलिए अपने गीतों के प्रकाशन में उन्होंने रुचि नहीं ली । उनकी आध्यात्मिक एवं दार्शनिक कविताओं में से कुछेक उनके शिष्यों ने इसी दौरान मद्रास में प्रकाशित करवायीं । वर्षों बाद जब वे वडलूर के लिए निकल पड़े तो उनके कुछ शिष्यों ने लगातार आग्रह करके उनके कुछ गीतों को प्रकाशित करने की अनुमति प्राप्त कर ली । इस पुस्तक का नाम था, 'तिरुअरुट्पा' (कृपा की पवित्र पुस्तक) । फिर भी उनके कई गीत अप्रकाशित ही रहे ।

9

चिदम्बरम को प्रस्थान

यद्यपि मद्रास शहर में रामलिंग को भरपूर सम्मान मिला, पर वे अपना पूरा दिन शहर से बाहर व्यतीत करते, देर रात घर लौटते। मद्रास छोड़ने के बहुत समय बाद वे लिखते हैं :

मैं मद्रास की
संपन्नता से डरता था,
कि यह मुझे
अधोगति तक पहुंचा देगी,
मेरे पिता,
तुम जानते हो
शहर के कोलाहल से दूर
खेतों में
मैं चिंतित घूमा करता था
कभी तपती धरती पर,
कभी ऊबड़-खाबड़
कंकरीले रास्तों पर
मेरी इस नियमित
थकान-भरी यात्रा को
क्या मैं
शब्दों में ढाल सकूंगा ?

सन् 1858 में पैंतीस वर्ष की आयु में प्रारंभ के एकाध वर्षों को छोड़कर शेष वर्ष वहां बिताने के बाद, उन्होंने सदा के लिए मद्रास छोड़ दिया। अपने कुछ शिष्यों को लेकर पैदल ही चिदम्बरम के लिए निकल पड़े। वहां की याद अभी ताजी थी। प्रारंभिक वर्षों से ही वे मरुदूर (जन्मभूमि), मद्रास, करूंगुझी, वडलूर और मेट्टुकुप्पम में रहे, फिर भी उन्होंने चिदम्बरम को अपना आधार नाम बनाया और वे 'चिदम्बरम रामलिंगम' कहलाये।

चिदम्बरम की ओर जाते हुए वे रास्ते में पड़ने वाले तीर्थ-स्थानों के दर्शन भी करते रहे, जैसे शैव संत तिरुज्ञान संबंदर का जन्म-स्थान सीरगाभी। प्रारंभ-काल में इन्हें ही अपना आध्यात्मिक गुरु माना था। वहां मन्दिर में व्याख्यान दिये और वहां के देवता की स्तुति में गीत गाये। इसके बाद वे वैथीस्वरन कोइल पहुंचे, वहां भी गीत गाये और स्तुति-गीतों की रचना की। अंत में अपने गांव मरूदूर के पास स्थित करूंगुभी पहुंच गये। उनके बड़े भाई, परशुराम पिल्लै जो वहां रहते थे, रामलिंग के पहुंचने के कुछ दिन बाद गुजर गये। रामलिंग चिदम्बरम के लिए निकलने ही वाले थे कि राजस्व-अधिकारी वेंकट रेड्डियार ने रामलिंग से अपने घर पर रहने का अनुरोध किया। रामलिंग वहां कुछ दिन रहे। घर पर उनके लिए एक कमरा तैयार किया गया और सन् 1867 तक जब वे करूंगुभी से निकले, तब तक वेंकट रेड्डियार और उनकी धर्म-पत्नी मुत्तियालु अम्माल ने नौ वर्ष उनकी सेवा की।

मद्रास की ही तरह यहां भी रामलिंग सारी रात घर पर रहते, और दिन-भर बाहर घूमते, ईश्वर के साथ चलते, मन्दिरों के दर्शन करते और गीत लिखते। यहां उनकी भटकन चिदम्बरम नटसम्राट् शिव के मन्दिर तक होती। चिदम्बरम, जिसे तमिल में तिल्लै कहा जाता है, इतना प्राचीन है कि सन्त माणिक्क वाचहर तक, जिनका समय सातवीं शती माना गया है, तिल्लै का उल्लेख 'प्राचीन तिल्लै' के रूप में करते हैं। तमिलनाडु के पांच प्रमुख तीर्थ-स्थानों में जो पंचभूतों के प्रतीक हैं (भारतीय मिथक : धरती, जल, अग्नि, वायु और आकाश), चिदम्बरम भगवान शिव के परम आकाशी स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है।

अब प्रत्यक्ष विरोधाभास (अथवा जो गैर-हिन्दुओं को विरोधाभास-सा लगता हो) को यहां स्पष्ट किया जाये। किवंदंतियों के अनुसार शैशव काल में ही रामलिंग को चिदम्बरम के शिव का अनुग्रह प्राप्त हो गया था। बाल्य काल में, उन्होंने मुरुगन (मुरुगन, स्कंदन, षण्मुख अथवा सुब्रह्मण्य) अथवा मद्रास के कंदस्वामी मन्दिर के देवता कंदन की अनुकंपा प्राप्त कर ली थी। मद्रास में समाधि की अवस्था में अपने कमरे के दर्पण में, उन्हें तणिहै के मुरुगन के दर्शन भी हुए थे। फिर वे चिदम्बरम के शिव की आराधना में लौट आये। इन सभी देवताओं की स्तुति में उन्होंने गीत गाये। ये सारी बातें रामलिंग के शिक्षित, अशिक्षित दोनों ही प्रकार के शिष्यों को विरोधी नहीं लगीं। इससे उनके मन में कोई शंका नहीं उपजी। वस्तुतः यह हिन्दू धर्म का आधार है, जो हर हिन्दू बिना किसी शिक्षण परंपरा के प्राप्त करता है। वह जानता है कि किसी भी रूप में अमूर्त की आराधना करो, ईश्वर वस्तुतः एक है। तमिल सिद्धों ने घोषणा की थी, "किसी भी देवता की आराधना करो, शिव उसी रूप में तुम्हारे सामने प्रकट होंगे।" भगवद्गीता में कृष्ण कहते हैं, "भक्त जिस

रूप में ईश्वर की कल्पना और आराधना करता है, उसी रूप में मैं उसकी आस्था को सत्य रूप देता हूं।"

करूंगुभी प्रवास के दौरान रामलिंग वृद्धाचलम, तिरुवण्णामलै, तिरुवडिहै गये और वहां देवताओं की स्तुति में गीत लिखे। पर चिदम्बरम चूंकि करूंगुभी के समीप ही था, इसलिए वहां वे नित्य आराधना हेतु जाते रहते।

भगवान् नटराज (शिव) के समक्ष चिदम्बरम में उन्होंने याद किया :

मैं शैव काल
में प्राप्त
तुम्हारी अनुकंपा को
जब याद करता हूं,
मैं खड़ा सोचता हूं,
कैसा वरदान रहा होगा
यह, कितने पुण्य
किये होंगे मैंने ?
तुम्हारी चाह लिये
भटक जो रहा हूं।
तुम्हारे निश्चित बुलावे की
प्रतीक्षा में, और उसके शीघ्र
न आने से
अधीर होकर
मैंने कह दिया,
वह दिन आ गया है,
अब मुझे अपना लो,
और प्रभो,
तुमसे मैंने कहा,
और वैसा ही तुमने किया।

वह इस बात की पुष्टि करते हैं कि चिदम्बरम के भगवान ने स्वयं उन्हें इस अनुग्रह की सूचना दी है :

हे प्रभो, मेरे गुरु तिल्लै में हुई वार्ता मुझसे !
मैं था खड़ा, तुम्हारे रहस्यमंडल के समक्ष
कहा था तुने, मेरा अनुग्रह अब से तेरे लिए है,
जैसा कि हमने वचन लिया था,

निश्चित रहो, आज से वह सारी शक्ति तुम्हारी है।
जो मेरे अनुग्रह से जन्मी हो, या समकक्ष हो।
जैसे तुम शरीर को सूक्ष्म, आध्यात्मिक
कारणों से
प्रसन्न करते हो, वैसा ही चुनो,
और रहो प्रसन्न
हम तुममें व्याप्त हो गये हैं
और अब रहेंगे तुममें ही
यही आशीष दिया
तूने, हे आशुतोष
तूने, दिखाया प्रकाश
मैं आगे बढ़ूं।

नटराज के प्रति और नटराज के विषय में उन्होंने इतने असंख्य और विविध गीत गाये कि उनमें से प्रतिनिधि उदाहरणों को चुनना कठिन होगा। हम यहां नीचे एक प्रचलित उद्धरण दे रहे हैं :

हे दिव्य नर्तक,
नृत्य करते हो, सबके
कल्याण के लिए तुम,
शिक्षित व अशिक्षितों के
सुख हो तुम
दुर्बल व सबल दोनों की शक्ति हो तुम
दृष्टा और अंधे की ज्योति हो तुम
जिज्ञासु और संतुष्टों की बुद्धि हो तुम,
सत् और असत् की मध्यम गति हो तुम,
दैवी और पाशविक शक्ति के बिधाता हो तुम,
अपनी स्तोत्रमाला तुम्हें अर्पित करता हूं,
आप प्रसन्न हों, हे प्रभो !

10

विश्वबंधुत्व समाज की स्थापना

इस आध्यात्मिक पराकाष्ठा का परिणाम यह हुआ कि रामलिंग ने सन् 1865 में 'समरस वेद सन्मार्ग संगम' की स्थापना की। बाद में सन् 1872 में उन्होंने वेद (धर्म) शब्द को हटा दिया और इसमें दो शब्द 'सत्य' और 'शुद्ध' जोड़ दिये। इस तरह इस नाम को बदलकर 'समरस शुद्ध सन्मार्ग सत्य संगम' कर दिया। यह नाम धर्मों से परे था। इसके मूल रूप की व्याख्या में ही यह धारणा निहित है :

> 'समरस वेद सन्मार्ग संगम' का अर्थ है, वह रास्ता जो सभी धर्मों में बताया गया है। इसका अर्थ हुआ वह मूल ज्ञान जो सभी में एक है। यह मूल ज्ञान चौथे पथ में निहित है। ये चार पथ हैं—दास मार्गम्, सत्पुत्र मार्गम्, सहमार्गम् तथा सन्मार्गम्।

पारंपरिक व्याख्या के अनुसार 'दासमार्गम्' वह मार्ग है, जिसमें ईश्वर की स्वामी के रूप में आराधना की जाती है, यानी ईश्वर की सेवा। 'सत्पुत्र मार्गम्' में ईश्वर पिता है; 'सहमार्गम्' में ईश्वर मित्र है; 'सन्मार्गम्' स्वयं को ईश्वर में लीन करने की अवस्था है।

रामलिंग के अनुसार उक्त विवरण सभी पंथों का धार्मिक आधार बताता है। वे इनके समकक्ष पक्षों की चर्चा करते हैं। 'समान दृष्टि के सत्पथ' में 'ईश्वर' की तुलना में 'जीव' का महत्व बताते हैं। वे कहते हैं :

> 'दासमार्गम्' के अंतर्गत सभी जीवात्माओं को एक के संरक्षण में माना जाता है। 'सत्पुत्र मार्गम्' के अंतर्गत सभी जीवात्माओं को एक ब्रह्म के पुत्र के रूप में माना जाता है। 'सहमार्गम्' सभी को मित्रवत् मानता है। 'सन्मार्गम्' जीवात्माओं को आत्मस्वरूप मानता है।

इस प्रकार रामलिंग ने 'सन्मार्ग' को ईश्वर से विश्व की ओर एक नया मोड़ दिया। अरूप ईश्वर से जीवन तत्व की ओर, दूरस्थ ईश्वर से विश्व ब्रह्म की ओर। उनके पंथ का मुख्य (इसे धर्म नहीं कहेंगे, क्योंकि इस शब्द से वे कतराते रहे) आधार-स्तंभ 'जीवकारुण्य' यानी जीवों के प्रति दया ही रहा है।

चौथे मार्ग की तात्विक प्रकृति है—वह प्रवृत्ति जो इस पंथ को स्वीकार

करने के पश्चात उत्पन्न होती है। उसमें आते हैं—

अहिंसा, सहिष्णुता, समचित्तता, आत्मसंयम, इंद्रियों पर नियंत्रण, जीवों के प्रति करुणा, जो आत्मा की स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने अहिंसा को प्रमुख माना है। और जीवों के प्रति दया-भाव को वे आत्मा की स्वाभाविक प्रवृत्ति मानकर चलते हैं। स्वाभाविक विराम प्रक्रिया में शक्तिशाली की जीत का जो फार्मूला प्रचलित है, यह उसके ठीक विपरीत पड़ता है। हो सकता है कि एक ऊंचे स्तर पर विभिन्न सिद्धांत एक साथ सक्रिय होते हों। समत्व का सिद्धांत, जिसे रामलिंग मानते हैं, विश्व के जीवन के साथ मानव के संबंधों की पुष्टि करता है, जो ईश्वर के साथ उसके संबंधों का प्रतिपूरक भी है।

रामलिंग की धारणा के अनुसार शैव मत के चारों संत उपदेशक, ईश्वरोन्मुख चार मार्गों के प्रतिमान रहे हैं—अप्पर या तिरूनावुक्करसर, ईश्वर के सेवक के रूप में, ज्ञानसंबंधर ईश्वर के पुत्र के रूप में, सुंदरर ईश्वर के मित्र के रूप में और माणिक्क वाचहर ने ईश्वर को अपने भीतर प्रेम के रूप में पहचाना।

सन् 1867 में 'सन्मार्ग वेद धर्मशाला' के उद्घाटन के अवसर पर उनकी एक पुस्तिका 'जीवकारुण्य ओभुक्कम' (जीव करुणा सिद्धांत) को, जिसे सन् 1866 के पहले उन्होंने लिखना प्रारंभ किया था, चिदम्बरम वेंकट सुब्ब दीक्षितर ने पढ़ा। इसमें निम्नांकित बातें प्रमुख थीं :

लोगों को यह ध्यान में रखना होगा कि वे अपने मानव जन्म के इस दुर्लभ अवसर के परिणाम को शीघ्र प्राप्त करने का प्रयास करें। इस परिणाम-प्राप्ति का अर्थ है, सभी जीवों, कार्यों, सभी वस्तुओं तथा संपूर्ण विश्व में प्रतिबिंबित उस परम सत्ता के प्रति सचेत होना और इस प्रकार एक बेहतर जीवन प्राप्त करना, जिसमें कभी भी किसी भी प्रकार से या किसी भी वस्तु में, कोई व्यवधान न पहुंचे।

इस तरह के जीवन और आनंद की प्राप्ति के लिए ईश्वर के सहज गुण, उनकी अनुकंपा को प्राप्त करना आवश्यक है। इस अनुकंपा को प्राप्त करने का एक ही रास्ता है। ईश्वर के गुण को अपना गुण बना लो। ईश्वर की अनुकंपा मनुष्य में जीवों के प्रति दया बनकर उभरती है।

इस पुस्तिका का प्रकाशन सन् 1879 में उनकी मृत्यु के पांच वर्ष बाद उनके शिष्यों द्वारा हुआ। इसका शीर्षक उल्लेखनीय है, 'जीवकारुण्य का सिद्धांत, सत्य मार्ग पर पहला कदम।' रामलिंग इस उपदेश का उल्लेख अपने प्रवचनों और शिष्यों को लिखे गये पत्रों में अवश्य करते हैं। वे इस बात को प्रमाणित करते हैं कि यह तथ्य सिद्धांतों, मतांधताओं, धर्म और पंथ से परे है और

प्रत्येक धर्म द्वारा स्वीकार्य है।

'परम प्रकाश के लिए याचना' में वे कहते हैं :

हे सबके प्रभु, परम देदीप्यमान करुणानिधान ! कृपा करो कि हमारा मन अब किसी मत या संप्रदाय के अनुष्ठानों तथा अन्य पथभ्रष्ट करने वाले तत्वों से, संस्कृति, जाति और संहिता से कलंकित न हो।

सभी जीवों में स्वदर्शन की भावना, चेतना जो किसी भी आध्यात्मिक जिज्ञासु का प्रमुख लक्ष्य है, उससे हम किसी भी समय, किसी भी स्थान पर, किसी भी तरह विचलित न हों। यह हममें हमेशा प्रकाशित होता रहे और हमें परिचालित करता रहे।

हे परम प्रकाश, हम आभारी हैं, तुम्हारी करुणा के !

11

जीवकारुण्य

रामलिंग का जीवकारुण्य तथा आध्यात्मिक जगत में इसको प्रतिष्ठापित करने का सिद्धांत, संभवतः मनुष्य द्वारा इस दिशा में प्राप्त सर्वोत्कृष्ट बिंदु है। वे उस परमतत्व की अनुकंपा में तल्लीन रहे, जो कि उनकी अपनी धारणा के अनुसार, उनके भीतर के परमात्म तत्व को ही प्रमाणित करता है। दंडपाणि स्वामिगल उन्हें करुणा का अवतार मानते हैं।

उनके काव्य में इस असीम करुणा के चरमोद्गार मिलते हैं। निम्नांकित काव्यांश, जो एक साथ दिये गये हैं, विभिन्न संदर्भों से चुने गये हैं :

कुम्हलाये धान को देखकर
मेरा मन भी कुम्हलाने लगा,
घर-घर भीख मांगते और
न मिलने पर, भूखे ही सोने वाले
निर्बल को देख,
मैं दुखी हो गया,
लंबी बीमारी को देखकर
मैं कांप गया,
वे भूख में आकुल,
पर भीख न मांगने वाले
आत्मसम्मानी,
टूटे हुए लोग,
मुझे तोड़ गये।

ब्रह्मांड के ईश्वर !
जब भी देखता हूं
मानव को भूख से कुलबुलाता,
या मरता,
मन में जैसे कोई चिंगारी

आग बनकर दहकने लगती है,
एक भय घेर लेता है मुझे
और मेरा शरीर कांपने लगता है ।
पशुओं की भर्रायी आवाज
करती है संत्रस्त,
भूखे पशु-पक्षी
मुझे पीड़ित करते थे,
बांग देते मुर्गे, बतख
अस्त-व्यस्त करते थे मुझे,
हे प्रभो, जब देखता था
उस हत्यारे चाकू को कसाई के हाथ,
कांप जाता था भय से ।

जब लोगों की आवाज,
विवाद तक पहुंचने लगी,
कांप गया मैं
उत्तेजना से कांपते हुए
जब दरवाजा बजाने लगे,
हिल गया था मैं,
हे प्रभो, जानते हो, जब कभी,
किसी ने पुकारा
'हे पिता', 'हे मां' या 'हाय'
उन शब्दों ने मुझे उखाड़ कर
फेंक दिया,
तूफान की तरह !

हे मानवातीत तत्व !
अंतिम सत्य, हे प्रभो !
मैं, तुम्हारा दास जो बंधा हूं,
बंधनों में, मित्रों, बंधुओं,
माता, भाइयों, बहनों, और अन्य
व्यक्तियों के बंधनों में,
अस्त-व्यस्त हो जाता हूं,
उनके चेहरों पर गुजरते दुख के

बादलों से :

हे पिता, अखिल ब्रह्मांड के गौरव
मेरे प्रभु, मेरे परम लक्ष्य !
क्या मुझे बताना होगा,
वह दुख, जो चीरता है मुझे,
जब इस दुखद विश्व में,
माता, बंधु, मित्र, मेरे अपने,
मेरे समीप के,
और मुझसे अलग, लोगों
ने सहे तमाम दुख, मैं
देखता रहा उन्हें सहते,
भूख की कुलबुलाहट,
रोग की पीड़ा, मर्मान्तक दुख
जानते हो तुम, प्रभो !

प्रभो, नृत्य तुम्हारा आशीर्वाद है,
सृष्टि के आदि और अंतिम आधार हो, तुम !
जीवन की इस गति में,
जब बूढ़े और युवा
परिचित और अपरिचित,
दुख से आहत हो,
अपनी विपदाओं और पीड़ाओं
को गिनाते हैं,
कांप उठता है, मेरा मन,
जानते हो तुम !

उन्होंने मांस-भक्षण को मूलतः बहुत ही हिंसक और अनाध्यात्मिक मानकर त्याग दिया तथा मांसाहारियों को अपने शिष्यत्व से वंचित रखा। उन्होंने घोषित किया कि यह सूचना उन्हें स्वयं ईश्वर से प्राप्त हुई है :

परम कृपालु प्रभु ने कहा,
जीव-हत्या करने वालों को,
मांसाहारियों को रखो दूर !
वे तुम्हारे विरोधी हैं।

उनका साहचर्य त्याग दो,
न रखो कोई संबंध उनसे,
अगर हो सके, तो उन्हें बचा लो भूख से,
करुणावान बनो, करुणा के साथ
सभी जीवों के प्रति करो दया !
हे ज्योतिपुंज, करुणानिधान,
सबके कल्याण के लिए नृत्य करने वाले,
प्रभो, अनंत है, तुम्हारी महिमा !

उन्होंने मांस-भक्षण का प्रबल विरोध किया :

कोई निपुण चमत्कारी,
बदल सकता हो, पुरुष को स्त्री में,
और स्त्री को सुंदरी में,
फिर उसे पुरुष में !
वह मृतक को जीवित कर सकता है,
पर मैं सच कहता हूं,
उस परम ज्योतिपुंज की खाकर शपथ,
अगर, वह क्रूर मन से
उस शरीर को, जो आत्मा का घर रहा हो,
खाने की सोचता हो,
मैं नहीं दे सकता उसे कोई सम्मान !

पशुओं को खाने की बात पर वे कातर हो उठते हैं :

जब देखता हूं मैं
मानव को रूखा और दूषित
मांस खाते हुए,
मैं दुखी हो जाता हूं,
मैं कांप उठता हूं,
मूर्छित होने लगता हूं,
मेरा रोम-राम सिहर उठता है,
जला हुआ काला मांस !
तुम, हे प्रभो, मेरे मन की
पीड़ा,

व थकान, समझते हो !

वे हत्या की भयावहता को बार-बार व्यक्त करते हैं :

कांप उठता था मैं,
भयावह हत्यारे की कुल्हाड़ी पर,
सर्मपित निरीह जीव पर
जो वार करती है, तेजी के साथ,
जब देखा अपनी ही आँखों से,
पशु की वह मूक वेदना,
या मछुआरे का
रेत में फैला जाल,
या गठान वाली रस्सी,
या कोई पिंजड़ा,
हे प्रभो, मेरे पिता !
कैसे बताऊं अपनी पीड़ा ?

पशु-बलि के विरोध में उन्होंने अपनी आवाज उठायी :

रोपते हैं वे नन्हें ईश्वर,
धरती पर,
और इनके नाम पर,
बलि चढ़ाते हैं,
बकरी, सूअर
मुर्गे और बैल,
उनके खून से लथपथ निर्जीव शरीर का,
प्रत्यक्षदर्शी हूं मैं,
इन छोटे-छोटे क्रूर देवताओं के
वीभत्स, खून से सने गृहों का,
बता नहीं सकता,
कितनी पीड़ा झेलता हूं मैं ।

वे प्रार्थना करते हैं :

हे प्रभो,
दो वरदान,
कि करुणामयी बनूं,

दुख और भय से करूं रक्षा,
जन की,
करो सहायता
कि एक संसार रच सकूं,
हत्या न हो जहां
जहां न हो, हत्या से भक्षण !
गाऊं तुम्हारी महिमा,
निरंतर
हे मां, यही है प्रार्थना मेरी !

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है इसलिए कि वे उपदेश देकर लोगों की तीखी प्रतिक्रिया सहना नहीं चाहते, अपनी पीड़ा का विवरण उस परमपिता से करते हैं। आज तमिलनाड में शाकाहारी अगर सबसे अधिक पाये जाते हैं, तो इसका श्रेय रामलिंग स्वामिगल को जाता है। उनके शिष्य वेलायुद मुदलियार लिखते हैं (मुदलियार के मूल अंग्रेजी से उद्धृत), "उनकी एक विशेषता जो अक्सर देखी जाती थी, वह यह कि वे मांसाहारी व्यक्ति को शाकाहारी में बदलने की शक्ति रखते थे। उनकी दृष्टि ही मानो मांसाहारी की प्रवृत्ति को नष्ट करने के लिए पर्याप्त थी।"

हम पाठकों का ध्यान पिछले अध्याय (विश्व-बंधुत्व समाज) की ओर आकर्षित करना चाहेंगे, जिसमें रामलिंग ने जीवकारुण्य को आध्यात्मिक अनुभूति के लिए सबसे महत्वपूर्ण माना है, तथा विश्व के साथ व्यक्ति के संबंध को ईश्वर के साथ उसके संबंधों का प्रतिपूरक माना है।

12

श्री कृपा-ग्रन्थ

'सन्मार्ग संगम' (विश्वबंधुत्व संघ), जिसकी स्थापना उन्होंने सन् 1865 में अपने करूंगुभी प्रवास (1858-67) के दूसरे दौर में की थी, वडलूर (1867-70) के तीसरे दौर का आधार बनी। इसके साथ ही, करूंगुभी के अन्तिम वर्षों में पहले दोनों दौर का परिणाम, शिष्यों द्वारा उनके गीतों के प्रकाशन के रूप में फलीभूत हुआ।

जिन शिष्यों ने यह बीड़ा उठाया था, वे थे पांडीचेरी के वेलु मुदलियार, सेल्वरायपुरम के शिवानन्द मुदलियार, इरूक्कम के रत्न मुदलियार। उक्त पुस्तक के लिए हम रत्न मुदलियार के प्रति ही, सबसे अधिक आभारी हैं।

रत्न मुदलियार ने रामलिंग की रचनाओं को प्रकाशित करने का सुझाव मद्रास के दिनों में ही रखा था। उन दिनों उनकी रचनाएं स्वैच्छिक रूप में कुछ प्रकाशक प्रकाशित करते रहे थे। उन्होंने कुछ प्रतिपूरक राशि देकर उन्हें ऐसा करने से रोकना चाहा, पर कोई परिणाम नहीं निकला। इसके बाद उन्होंने विभिन्न स्रोतों से रामलिंग की रचनाओं को इकट्ठा करना प्रारम्भ किया और रामलिंग से अनुमति प्राप्त करने का प्रयास किया। रामलिंग निरपेक्ष रहे। सन् 1860 से 1866 तक, यानी छह वर्षों तक रत्न मुदलियार दृढ़प्रतिज्ञ रहे, जैसा कि उनके बीच पत्र-व्यवहार से पता लगता है। सन् 1860 में उन्होंने रामलिंग को लिखा (हालांकि मूल पत्र गुम हो गया है, पर रामलिंग द्वारा दिये गये उत्तर में इसकी चर्चा है) कि जब तक पुस्तक छप नहीं जायेगी, वे केवल एक समय भोजन करेंगे। रामलिंग ने अपने 30 दिसम्बर 1860 को दिये गये उत्तर में लिखा, कि वे अपनी रचनाएं संकलित करेंगे। परन्तु वे अपने अनन्यतम मित्र से अनुरोध भी करेंगे कि वे अपना प्रण त्याग दें। रामलिंग ने लिखा कि अन्यथा वह स्वयं भी इस तरह का प्रण ले लेंगे। अन्ततः सन् 1867 में रत्न मुदलियार ने उनकी रचनाओं को एकत्रित किया और पुस्तकाकार प्रकाशित करने में सफल हुए। सामग्री का संचयन एवं सम्पादन रामलिंग के प्रमुख शिष्य तोझुवूर वेलायुद मुदलियार द्वारा किया गया। इन्होंने पुस्तक को चार अध्यायों में विभक्त किया और इसे 'श्री कृपा-ग्रन्थ' शीर्षक दिया। परिशिष्ट में उन्होंने रामलिंग की प्रशंसा

करते हुए उनके जीवन का विवरण दिया है। पुस्तक के प्रकाशन की अवस्थाओं की चर्चा भी है। यह सब उन्होंने छियासठ पदों के लम्बे काव्य में कहा है। मइलापुर के सोमसुन्दर चेट्टियार के वित्तीय सहयोग से एशियाटिक प्रैस, 292, लिंगि चेट्टी स्ट्रीट, मद्रास द्वारा यह पुस्तक प्रकाशित की गयी।

इस लम्बी खिचने वाली प्रक्रिया के दौरान रत्न मुदलियार ने मार्च सन् 1866 में रामलिंग से उनका नाम 'रामलिंग स्वामिगल' के रूप में प्रकाशित करने की अनुमति मांगी। रामलिंग ने उत्तर दिया, "रामलिंग स्वामी के रूप में पहचान करवाना मेरे निश्चय के विपरीत है। यह विशेषण मुझे आडंबरपूर्ण लगता है, इसलिए इससे बचना ही अच्छा होगा।" पर वेलायुद मुदलियार उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने को तत्पर थे, इसलिए उन्होंने पुस्तक उसी नाम से प्रकाशित की, जिसे अपने गुरु के लिए उन्होंने स्वयं रचा था। वह नाम था, "दैवी प्रकाश-निधान—चिदम्बरम रामलिंग पिल्लै"। रामलिंग ने जब इस पुस्तक को देखा तो वे दुखी हुए। अपने को आश्वस्त करते हुए उन्होंने अपने शिष्यों से परिहास में कहा, "इसका अर्थ यूं कर सकते हैं, 'यह प्रश्न करने वाला रामलिंग कौन है, जो दैवी कृपा से पूर्ण है' ?" (तमिल में शब्दों के हल्के फेर से यह भाव भी निकल सकता है।)

यदि, पुस्तक के प्रकाशन से जुड़ी यह घटना रामलिंग स्वामिगल की चरित्र-गत विशेषता को प्रतिबिंबित करती है, तो इसके बाद की घटना भी फिर एक टिप्पणी के रूप में उभर कर आयी।

पुस्तक के प्रकाशन के समय रामलिंग करूंगुझी को छोड़कर वडलूर जा रहे थे, वे अपनी आध्यात्मिक प्रगति के अगले चरण तक पहुंच चुके थे। उनका भरपूर विकास, वडलूर और मेट्टुकुप्पम में हुआ। वे सभी कर्मकांडों, सम्प्रदायों, धर्म-ग्रन्थों से परे, अरूप दैवी चेतना की अपूर्व दृष्टि प्राप्त करने की ओर अग्रसर होने लगे थे। इस कारण उनके कई पूर्व समधर्मी उनके विरोधी बन गये थे। अरूमुग नावलर नाम के एक बुजुर्ग, कट्टर शैव इनमें प्रमुख थे। अन्य लोग रामलिंग का सम्मान करते थे, इसलिए अलग रहे, पर नावलर बहुत अधिक उत्तेजित हुए। विशेष रूप से वे धर्मपरित्यागी के लिए प्रयुक्त सम्मानसूचक विशेषणों को लेकर भड़क गये थे। 'तिरूअरूट्पा' (श्री कृपा-ग्रन्थ) तथा 'तिरूमुरै' (श्री पद्धति)—ये दोनों शब्द, 'देवारम' और 'तिरूवाचकम' (सातवीं एवं नवीं शताब्दी ई० में शैव भक्तों 'नायनमार' द्वारा शिव की स्तुति में लिखी रचनाओं का संग्रह) के लिए ही प्रयुक्त हो सकते थे। इनका प्रयोग, आगे की शताब्दियों में पैदा हुए आध्यात्मिक गुरुओं और सन्तों की रचनाओं के लिए निषिद्ध-सा था। नावलर को लगा रामलिंग का नया धर्म (सन्मार्ग) कई अन्य धर्मों के प्रति उदार भाव विशेषकर ईसाई संप्रदाय के प्रति। उन्होंने एक विवाद खड़ा किया।

'अरूट्पा' (श्री कृपा-ग्रन्थ) को मरूट्पा (अज्ञान का ग्रन्थ) कहा तथा 'असत्य-मार्ग की पुस्तक का खंडन' नाम की पुस्तिका प्रकाशित की। इस विवाद ने पिछली शताब्दी के अंत तथा इस शताब्दी के प्रारंभ में तूफान-सा खड़ा किया। परिणामत: एक कवि के रूप में रामलिंग की छवि कुछ धूमिल पड़ने लगी।

यह जानकर कि उनके विरोध से रामलिंग के शिष्यों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, नावलर ने दूसरे रास्ते अपनाये। चिदम्बरम में रामलिंग द्वारा दिये गये एक प्रवचन पर मानहानि का दावा किया। नावलर ने आरोप लगाया कि रामलिंग ने उनके व्यक्तित्व पर प्रहार कर उन्हें धमकाया है। इस मुकदमे की सुनवाई मंजुकुप्पम में हुई। नावलर ने वकील किया, पर रामलिंग के पास कोई वकील नहीं था। कचहरी में रामलिंग के उपस्थित होते ही पूरी भीड़ उनके सम्मान में उठ खड़ी हुई और उन्हें रास्ता दिया। सभी पारंपरिक ढंग से हाथ जोड़े खड़े रहे। नावलर ने भी यही किया। जज तक उठने को थे, पर अपनी न्यायिक रीति को ध्यान में रखते हुए बैठे रहे। कार्यवाही प्रारम्भ करते हुए उन्होंने नावलर से उनके खड़े होने का कारण पूछा। नावलर का उत्तर था, चूंकि सब खड़े हुए थे इसलिए वे भी खड़े हो गये। जज ने आगे पूछा कि सबने ऐसा क्यों किया ? तो नावलर ने उत्तर दिया, 'सम्मान प्रदर्शन के लिए।' जज ने कहा, 'तो आप भी खड़े हुए।'

'जी,' नावलर ने कहा।

'इसका कुछ अर्थ भी होगा।'

'हां।'

'तो आप मानते हैं कि वे सम्माननीय हैं। तो इस बात को ध्यान में रखते हुए आपको यह मुकदमा दायर नहीं करना चाहिए था। अगर किया था, तो उनके सम्मान में उठने की कोई आवश्यकता नहीं थी। आपकी इस स्वत:भूत प्रतिक्रिया में सच्चाई है। इसलिए यह केस खारिज किया जाता है।'

अन्त में हम 'तिरुअरूट्पा' की कथा को जान लें, हालांकि इस बिन्दु पर यह हमें कालानुक्रम से आगे ले जायेगा। रामलिंग के जीवन-काल में प्रकाशित पहले के चार अध्याय आज भी वैसे ही हैं। पांचवे अध्याय में तिरूवोत्तियूर प्रवास के दौरान रचे गये गीत हैं, जो तिरूत्तणी के भगवान कंदन की स्तुति में गाये गये हैं। इनका प्रकाशन सन् 1880 में तोभुवूर वेलायुद मुदलियार ने किया था। तिरूच्चिपुरम के लोकनाथ चेट्टियार द्वारा, वेलूर के पद्मनाभ मुदलियार तथा बंगलौर के राघवलु नायकर के प्रयासों से सन् 1885 में रामलिंग द्वारा वडलूर तथा मेट्टुकुप्पम में रचे गये गीतों का संकलन प्रकाशित किया गया, हालांकि इसे प्रकाशित करने की अनुमति उन्हें नहीं मिली थी। 'तिरुअरूट्पा' एक विराट् ग्रन्थ है, आकार के साथ-साथ अपने गीतों के लिए भी विशिष्ट है।

13

व्यक्तिगत विशेषताएं

यहां पर रामलिंग की कुछ व्यक्तिगत विशेषताओं की चर्चा अप्रासंगिक नहीं होगी।

तोभुवूर वेलायुद मुदलियार ने थियोसोफिकल सोसाइटी को दिये गये विवरण में रामलिंग का वर्णन (अंग्रेजी में) यूं किया :

> देखने में रामलिंग मध्यम कद के दुबले व्यक्ति थे—इतने दुबले कि अस्थियों का ढांचा मात्र नजर आते थे, फिर भी वे मजबूत काठी के थे, एकदम सीधे तने हुए, तेजी के साथ चलते हुए, सांवई रंग का चेहरा, लंबी पतली नाक, बड़ी-बड़ी तीक्ष्ण आंखें, चेहरे पर छायी उदासी। अन्तिम दिनों में उनके बाल लंबे हो गये थे, वे जूते पहना करते थे, जो योगियों के लिए असाधारण बात थी। उनकी वेशभूषा सफेद वस्त्र के दो टुकड़े मात्र थे। वे अत्यधिक संयमी थे। वे कभी क्षण-भर के लिए भी विश्राम नहीं करते थे। पूर्णतः शाकाहारी थे, वे दो-तीन दिन में एक बार खाते, तिस पर भी कुछ कौर चावल खाकर सन्तुष्ट हो जाते। पर जब दो-तीन माह तक व्रत करते, तो कुछ भी नहीं खाते। केवल गुनगुने पानी में चीनी घोलकर पी लेते।

रामलिंग का व्यक्तित्व चुम्बकीय था। असामान्य रूप में याद आने वाला आकर्षक चेहरा, करुणा और दया से चमकती आंखें। ऊरन अडिगल (तमिल में) लिखते हैं, "जिन्होंने रामलिंग के दर्शन का सौभाग्य नहीं प्राप्त किया है, उनके लिए यह कहना कि 'रामलिंग ऐसे थे, उनका रंग ऐसा था, व्यक्तित्व ऐसा था' निरर्थक है।" कहा जाता है कि उस महान संत का शरीर फोटोग्राफी से परे था। उसे कैमरे द्वारा छायाचित्र में कैद करना सम्भव नहीं था। उनकी परछाईं तक नहीं पड़ती थी।

रामलिंग धार्मिक कवियों के विपरीत आश्चर्यजनक रूप से आत्मकथात्मक कवि हैं। वे अक्सर अपने प्रति, अपनी परिस्थितियों के प्रति सजीव चित्रात्मक ढंग से अनुभवों का संकेत करते हैं। वे अपनी शारीरिक विशेषताओं, आदतों तथा वेशभूषा की ओर भी संकेत करते हैं। अपने कमजोर शरीर के विषय में कहते हैं :

मैं, टेढ़ी बुद्धि
और कमज़ोर शरीर वाला,
तुम्हारे पास जो रोता हूं,
हे प्रभो, गंगा और चंद्रमा को अपनी
जटाओं में कैद करने वाले शिव,
तुम नहीं दोगे प्रत्युत्तर
तो कौन देगा ?

वे सदैव सफेद कपड़े पहनते रहे। उनकी वेशभूषा, सफेद कपड़े के दो टुकड़ें मात्र थे। कोई अन्य परिधान नहीं, कोई अन्य रंग नहीं। तमिल शैव सिद्धांत के चार अन्य उपदेशक भी श्वेत वस्त्रधारी ही थे। रामलिंग ने अपने एक प्रवचन में कहा है :

गेरुए वस्त्र युयुत्सा के द्योतक हैं—
युयुत्सा उस व्यक्ति की, जो लड़ता है,
अपनी ही प्रकृति से,
जिसने पराजय कर लिया है प्रकृति को,
प्राप्त किया है करुणा को,
श्वेत वस्त्र उचित हैं उसके लिए।

वे अपने श्वेत वस्त्रों के विषय में, एक पद्य में कहते हैं, जिसमें कुछ और बातें भी हैं :

झूलते हुए हाथों से शरमाकर
मैं हाथ जोड़े चलता रहा
नग्न होने की अनिच्छा से,
ढंक लिया अपने शरीर और सिर को,
सफेद वस्त्र में,
मैंने देखा नहीं उस ओर
जहां चालाकी टहलती हो,
मैं दुखी हो जाता,
वरना।

रामलिंग का यह सजीव चित्रण सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति का रूप सामने लाता है। वे वस्त्रों के प्रति लोभ से हमेशा बचते रहे :

मैं दुखी हुआ,

जब मित्रों ने सुनहले किनारे की
धोती, मुझे पहनायी,
कितना व्याकुल हो गया था मैं
हे प्रभो !
फिर वह घबराहट,
जब उन्होंने भरी धूप में,
छतरी तान दी, मेरे सिर पर,
कांप गया मैं !
मैंने हाथों का रूमाल
खोंस लिया था कमर में,
ताकि हाथ जुड़े रहें,
तेरी प्रार्थना करते रहें।

आगे वे कहते हैं :

ऊँचे आसन मुझे
अव्यवस्थित करते हैं,
पैरों के ऊपर पैर
मुझे अभिनय-सा प्रतीत होता है,
नहीं सो सकता मैं
नरम गद्दों पर,
मंच पर बैठकर मैं
नहीं लटका सकता अपने पांव;
ऊंची आवाजें
भयभीत करती हैं मुझे,
हे मां, मुझे इन सबसे बचाओ !

वे बहुत कम खाते। शुरू के दिनों में वे दिन में दो बार खाते। धीरे-धीरे केवल एक बार खाने लगे। बाद में, दो-तीन दिन में एक बार खाने लग गये थे। वह भी केवल कुछ कौर ! कभी-कभी तो दो-तीन माह तक कुछ नहीं खाते, केवल शक्कर-पानी पर ही रह जाते। अंतिम दिनों में, जैसा कि उनके शिष्य बताते हैं, उन्होंने खाना बिल्कुल त्याग दिया था। उनके गीतों में इसकी चर्चा भी है :

तब—जब मैं,
खाता था दो बार दिन में,
और सोता था देर तक—

तुमने, वह भोजन और निद्रा,
अपनी सेवा के लिए मेरे दास बनाये ।
जब मैं खाने लगा
केवल एक बार, मेरे पिता,
लोग चौंक गये, प्रश्न करने लगे ।

उन्होंने घोषणा की :

बार बार खाये गये,
सुस्वादु भोजन की
लहर में,
संयम और तपस्या की
सारी उपलब्धि चूर हो जाती है,
जैसे उफनती नदी में
उखड़ा इमली का कोई वृक्ष ।

वे बहुत कम सोते थे । वे अपने शिष्यों से कहते कि व्यक्ति को अर्ध-रात्रि से प्रातः तीन बजे तक ही सोना चाहिए। मेट्टुकुप्पम में दिये गये प्रवचनों में, उन्होंने प्रतिदिन केवल एक घंटा सोने की सलाह दी । कहा जाता है, कि युवावस्था में वे प्रतिदिन तीन घंटे सोते थे, फिर दो घंटे सोने लगे, और फिर एक घंटा । उनके शिष्यों के अनुसार, अंतिम दिनों में उन्होंने निद्रा त्याग दी । वे ईश्वर को संबोधित करते हुए कहते हैं, "तुमने निषिद्ध किया है, नींद के लिए !" उनके अनुसार वे नींद के प्रति आतंकित हैं :

परम प्रकाश, जिसका न आदि है न अंत,
क्या तुमने अपनाया है मुझे ?
मैं घृणा करता हूं, उस निद्रा से,
जो रात-दिन मेरे पास आती है ।
मैं परेशान हूं, कि वह आती है,
मैं सोता हूं अनिच्छा से,
और जागकर तुम्हें पुकारता हूं,
हे प्रभो, कब छोड़ सकूंगा इस निद्रा को ?

वे निद्रा का निषेध करते हैं :

निद्रा, सुस्त, मूर्ख ! सावधान !
यदि इस चेतावनी के क्षण भर बाद ही,

नहीं त्यागा मुझे तूने,
तो दूंगा श्राप तुझे !
मैं दुखों से परे हो गया हूं,
मैंने सृजनात्मक शक्ति पा ली है,
प्रसन्न हूं मैं।
मैं नहीं अब तुम्हारे लिए,
जाओ और शीघ्रता से जाओ,
मेरे साथ स्वर्णिम और सूक्ष्म जगत के
ईश्वर हैं !

वे निर्विकार रूप में प्रतिबद्ध थे, बेहद विनम्र थे। अत्यंत सात्विक और गरिमावान थे। साधारणत: बुद्धिमान व्यक्तियों की अंतिम कमजोरी, यशोपार्जन भी उनमें नहीं थी। वे ईश्वर में रमे अपने में पूर्ण थे :

चाहता था मैं विश्व में
अनाम रह जाना,
पर पाया, गलियों में
घूरते हैं लोग मुझे।
यह कैसी उलझन है ?
हे प्रभो, मुझे बताओ,
मैं परेशान हूं।

मनुष्य की अंतिम उपलब्धि—मन पर पूर्ण काबू प्राप्त करना—उनकी होकर रही। उन्होंने मन को अपने से अलग कर लिया :

वानर-वृत्ति वाले, मूर्ख मन,
चले जाओ !
वह सारी चाल, जो औरों के साथ
खेलते हो,
यहां मत खेलो !
यदि तुम रहते हो सीमा के भीतर,
तो रहने दूंगा मैं तुम्हें—
वरना, जाओ।
दूंगा नहीं कोई छूट तुम्हें !
मुझे सच्चे रास्ते के उस
ईश्वर का,

सच्चा पुत्र जान लो।

वे लौकिक तत्वों से परे ही रहे, और इस कदर अलौकिक रहे कि हम जैसे साधारण मानव उनका अनुकरण नहीं कर पाते। रामलिंग की चर्चा करते समय हस्टन स्मिथ की बुद्ध के विषय में कही उक्ति अनायास याद आती है :

> बुद्ध का संपूर्ण जीवन इसी लक्ष्य पर आधारित था, कि उन्हें एक आध्यात्मिक उद्देश्य पूरा करना है। ग्रंथों में बुद्ध की भरपूर प्रशंसा है···शब्दों ने अपना काम पूरा कर लिया, तो उनके गुरु के पास रहस्य का सार तत्व बना रहा—वह असीमित गहराई जिसे शब्द आकार नहीं दे पाये क्योंकि उनके विचार उन तक पूर्णत: न पहुंच सके। वे जो भी समझ सके, उसे उन्होंने सम्मान दिया और प्यार किया, पर इससे भी अधिक कुछ था, जिसे वे प्राप्त नहीं कर पाये। अंत में वे आधे प्रकाश, आधी छाया में रहे, संपूर्ण बोधगम्यता को चुनौती देते हुए।

रामलिंग की करुणा पर तो हमने एक पूरा अध्याय ही लिख दिया है।

बुद्ध के संदर्भ में हस्टन स्मिथ कहते हैं, "फ्रांसीसी कोमलता इतनी मजबूत कि उनके संदेश को 'असीम करुणा का धर्म' भी कहा गया।" इस लेखक को लगता है, कि रामलिंग में मानवीय करुणा चरम सीमा पर पहुंच गयी। उन्होंने इसे आत्म-शुद्धि और ईश्वरत्व को प्राप्त करने का अत्यावश्यक एवं एकमात्र चरण माना। साथ ही ऐसी कोमल, दृढ़, सही और तार्किक शर्तों के साथ जो न पहले कभी सुनी गयीं, न ही सुनी जा सकेंगीं। उनके प्रवचनों में से कुछ पद्यांश हम पहले दे चुके हैं, कुछ और यहां जोड़ते हैं :

ऐसा मानव हो प्रभो,
जो रहे सदय जीवों के प्रति,
जो देखे सम भाव से,
मैं करूंगा उसका सम्मान प्रभु-जितना,
बनूंगा उसका दास
और, साथ में उसके
उठूंगा मैं भी कुछ ऊपर !

मिला दो उस मानव से,
जो देखे
सबको अपना-सा,
न हो भेदभाव,

हो बस एक भाव,
मैं रखूंगा उसे
हृदय में अपने,
जहां नृत्य करते हो तुम,
रहूंगा दास सदा उसका
जैसे हूं दास तुम्हारा !

मिला दो उस मानव से मुझे,
जो रखे दया भाव,
जो देखे समभाव से सभी को,
सत्य के प्रकाश से,
होता हो प्रकाशित पथ जिसका,
मैं रखूंगा उसे
हृदय में अपने,
उसके वचन मानूंगा,
जैसे हों
स्वयं तुम्हारे।

इन पंक्तियों में उनके संदेश का सार निहित है।

14

एक चमत्कार, एक दृष्टांत और एक विवाद

करूंगुझी में रामलिंग जनहीन आकाश में नहीं रहे। उनका घर सड़क के किनारे था और वे मानव मात्र के मित्र थे। लोग उनसे सलाह लेने और अपनी तकलीफों से मुक्ति का रास्ता जानने के लिए उन्हें घेरे रहते। इसका हवाला उनकी कुछ पद्य-रचनाओं में मिलता है, जिनका उदाहरण हम पहले दे चुके हैं। दूर-दूर के लोग अपने घरों को छोड़कर उनके पास रहने के लिए आते थे। लोग उन्हें अपने घर उत्सवों और संगीत समाराहों में आमंत्रित करते। ऐसे आमंत्रण बराबर बने रहते। लोग उनकी सेवा के अवसर को ही आशीर्वाद का रूप मानते थे। वे एक पंथ और दृष्टांत के रूप में जाने जाने लगे। दिन-रात समाधि लगाते हुए और कविताएं रचते हुए वे घर पर या सभाओं में प्रवचन देते और उन्हें सुनने भीड़ जुट जाती।

करूंगुझी के वेंकट रेड्डियार के घर उनकी पत्नी मुत्तियालम्माल स्वयं उनके कमरे में दिया जला जातीं और उसके पास मिट्टी के बर्तन में तेल रख देतीं, जिसकी सहायता से दिया जलता रहता। एक दिन बर्तन का मुंह कुछ चिटक गया, तो मुत्तियालम्माल ने उसे बदलना चाहा। वे नया बर्तन लायीं और उसे पानी से भर दिया और दिये के पास रख दिया, ताकि प्रयोग के पहले उसका कच्चापन दूर हो जाये। इसके बाद वे अपने घर, पड़ोस के गांव चली गयीं। रामलिंग रात-भर कविताएं लिखते रहे, जैसा कि वे अक्सर करते थे। रामलिंग यांत्रिक गति से मिट्टी के बर्तन के पानी को दिये में डालते रहे। अगली सुबह जब मुत्तियालम्माल लौटीं, उन्होंने देखा कि रामलिंग लिखने में पूरी तरह डूबे हुए थे और दिया जल रहा था। उन्होंने उनकी भूल पकड़ ली, जो अनायास ही चमत्कार में बदल गयी थी। अपने अनुभवों को अक्सर अभिलेखित करने की आदत के परिणामस्वरूप एक कविता में रामलिंग इसका संदर्भ देते हैं। वे ईश्वर को इसका श्रेय देते हैं, अपनी शक्तियों को नहीं। तोझुवूर वेलायुद मुदलियार तथा मदुराइ चिदम्बर स्वामिगल भी ऐसे चमत्कारों की चर्चा करते हैं। उनके चमत्कारों के दृष्टांत अनंत हैं, उन्हें यहां गिनाना संभव नहीं।

अप्पास्वामी चेट्टियार, जो रामलिंग के प्रशंसकों में थे, कडलूर से करूंगुझी

अपने गुरु से मिलने आते। रामलिंग की कृपा से उनके भाई की जिह्वा का घाव ठीक हो गया था, तब से वे रामलिंग की सेवा में अपने को अर्पित कर चुके थे। रामलिंग सन् 1866 में कडलूर में कुछ माह उनके साथ रहे।

एक दिन चेट्टियार के बरामदे के सामने दो पंडितों के बीच भाग्य और कर्म को लेकर विवाद छिड़ गया। अथवा यूं कहें, ईश्वर की दया या कर्म। वे देर तक बहस करते रहे। एक का मंत्र वाक्य था, 'ईश्वर की इच्छा के बिना तिनका भी नहीं हिल सकता' और दूसरे का कहना था, 'आत्मा जैसा चाहती है, कर सकती है।' बहस करते हुए वे भीतर आये और रामलिंग से समाधान की याचना की। रामलिंग ने एक दृष्टांत सुनाया। उन्होंने कहा :

> वेदों का कथ्य लोगों तक नहीं पहुंच सकता। मैं आप लोगों को एक कहानी सुनाता हूं। एक बार एक योगी गलियों में नग्न घूमा करते थे। एक व्यक्ति ने, उनकी इस निरपेक्षता को देखा और उन्हें केले का पत्ता दिया। दूसरा व्यक्ति क्रोधित हो उठा कि औरतों के सामने यह योगी निर्लज्ज घूम रहा है, और एक पत्थर उठाकर उनकी ओर फेंक दिया। तीसरा व्यक्ति यह देखकर त्रस्त हो उठा और उसने उस व्यक्ति और योगी दोनों को न्यायाधीश के सामने प्रस्तुत किया और उनसे बोला, 'इस भले आदमी ने योगी को केले का पत्ता दिया और इस दुष्ट ने उन्हें पत्थर से मारा। मैं दोनों को आपके पास लाया हूं, एक को दूसरे के कर्म के साथ के रूप में।' न्यायाधीश ने योगी से पूछा, 'किसने तुम्हें मारा ?' योगी ने उत्तर दिया, 'जिसने मुझे केले का पत्ता दिया !' न्यायाधीश ने पूछा 'तुम्हें केले का पत्ता किसने दिया ?' योगी ने उत्तर दिया, 'जिसने मुझे मारा।' 'स्पष्ट कहो,' न्यायाधीश ने कहा। 'हां,' योगी बोला, 'जो व्यक्ति मुझे यहां तक लाया है, उसने मुझे पत्थर से मारा है।' न्यायाधीश समझ गये कि योगी से किसी बेहतर स्पष्टीकरण की अपेक्षा नहीं की जा सकती। फिर अपने विवेकानुसार उसने योगी पर प्रहार करने वाले को उचित दंड दिया। इसी प्रकार योगी की स्थिति को प्राप्त व्यक्ति अपने और ईश्वर के कर्मों के बीच कोई भेद नहीं कर पाता। वह सभी को, सभी वस्तुओं को ईश्वर का प्रतिरूप मानता है। 'तिनका भी नहीं हिलता ईश्वर की इच्छा के बिना।' यही उसका मंतव्य हो सकता है। पर जो केले का पत्ता देने वाले व्यक्ति को, प्रहार करने वाले व्यक्ति को और न्यायाधीश के सामने ले जाने वाले व्यक्ति को, अलग-अलग करके देखता है, उसका मत अहं-प्रधान होता है। वह सोचता है, 'यह मेरा काम है, यह ईश्वर का काम है।'

दोनों विद्वान संतुष्ट हो गये। दोनों की बात का विरोध नहीं हुआ।

कडलूर प्रवास के दौरान रामलिंग और ब्रह्म समाज के नेता के बीच वाक्युद्ध छिड़ गया। वाद-विवाद को अलप्पाक्कम के नारायण रेड्डियार ने लिपिबद्ध किया, जिनका कहना था कि यह वादविवाद का शब्दशः अभिलेख है। उन्होंने इन पृष्ठों का शीर्षक रखा, 'शब्दशः अभिलेख'। इसका प्रकाशन इसी शीर्षक से सन् 1893 में 'सन्मार्ग मुन्नेत्र कभ्रगम' (सन्मार्ग प्रचारक संस्था) द्वारा हुआ।

16 जनवरी सन् 1867 में रामलिंग कडलूर के निकट तिरूपाप्पूलियूर में पन्नै नदी के किनारे एक समारोह में उपस्थित थे। ब्रह्म समाज के नेता श्रीधर स्वामी नायक्कर भी अपने कुछ शिष्यों के साथ वहां थे। स्थानीय लोग उनके भाषण को पहले ही सुन चुके थे। स्थिति का लाभ उठाते हुए कुछ लोग रामलिंग के पास पहुंचे और उन्हें बताया कैसे श्रीधर स्वामी नायक्कर ने उन्हें मूर्ति-पूजा को छोड़ देने का आग्रह किया था जबकि मूर्ति-पूजा, निराकार ईश्वर के प्रति ध्यान लगाने का एकमात्र माध्यम है। रामलिंग ने संक्षेप में कहा, "जो ब्रह्म को समझ गये हैं वे आगे की सोच सकते हैं। पर जो मूर्तिपूजक हैं, वे इसी तरह रहें। दोनों ही अपने स्तर पर उचित हैं।"

भीड़ में कुछ लोग नायक्कर की ओर देखकर बोले, "कृपया हमें अपने विचारों से अवगत करायें।"

नायक्कर जिद पर अड़े रहे। उन्होंने कहा कि वे मामले को परस्पर सुलझाना चाहते हैं, वह भी पत्राचार के माध्यम से। इस पर न तो रामलिंग ने, न ही भीड़ ने सहमति व्यक्त की।

अपमानित होकर नायक्कर ने घोषणा की, "मूर्ति-पूजा बचकानों और निखट्टू लोगों के लिए है। चिंतन की सही वस्तु है वह परम ब्रह्म, जो निराकार, सर्वत्र व्याप्त, निर्गुण, वाणी और कल्पना से परे है। हमारे ब्रह्म समाज की यही धारणा है।"

"यदि ब्रह्म वाणी और कल्पना सोच से परे है तो मन उसे कैसे ग्रहण कर सकता है ? यह तो कुछ वही बात हुई कि आकाश को हाथों से नाप लो, या हवा को मुठ्ठियों में कैद कर डालो। जहां तक सिद्धांत का प्रश्न है, यह ठीक है, पर यह चल नहीं पायेगा," रामलिंग ने कहा।

"मेरा तात्पर्य यह है कि हालांकि मन ब्रह्म के निराकार रूप को अन्य वस्तुओं की तरह ग्रहण नहीं कर सकता, पर ध्यान तो लगा ही सकता है।"

"यदि किसी वस्तु का एक छोटा-सा हिस्सा मन की पकड़ में आ जाये तो धीरे-धीरे उसके और हिस्से ग्रहण किये जा सकते हैं, जब तक वह पूरा का पूरा ग्रहण न हो पाये। यह नहीं कहा जा सकता कि एक व्यक्ति किसी वस्तु को आंशिक रूप में ग्रहण कर सकता है। या तो यह वाणी और कल्पना से परे है, या नहीं। साथ ही, यदि मन इसे आंशिक रूप से ग्रहण कर सकता है तो अन्य इंद्रियों

—दृष्टि, श्रवण, स्वाद, स्पर्श और गंध के माध्यम से इसे ग्रहण किया जा सकता है। यदि वे ऐसा करते हैं तो ब्रह्म की प्रकृति के विपरीत होगा। जब मन समाप्त हो जाता है, तब ब्रह्म की अनुभूति होती है। जब मन धीमे से प्रवेश करता है तब ब्रह्म-ज्ञान—जो अनुभव भी है—समाप्त हो जाता है। मन और ब्रह्म विपरीत प्रकृति के हैं। मन ठोस है, आत्मनिर्भर नहीं है, यह क्षणिक है, दूषित और दुखद है; ब्रह्म चेतना है, ज्ञान है, आलौकिक और परमानंद-दायी है। इसलिए मन से ब्रह्म को ग्रहण नहीं किया जा सकता, यह उसका चिन्तन नहीं कर सकता। वेद और महान ग्रंथ इसे प्रमाणित करते हैं," रामलिंग ने कहा।

नायक्कर मौन रहे। श्रोताओं द्वारा उत्तर देने के लिए प्रेरित किये जाने पर उन्होंने अपनी बात दोहरायी, "मन ब्रह्म के विषय में सोच सकता है।"

रामलिंग ने कहा, "तब तो आंखें भी ब्रह्म को देख सकती हैं, सभी इंद्रियां ब्रह्म को अनुभव कर सकती हैं।"

"क्या यह आवश्यक है कि यदि मन किसी वस्तु को ग्रहण करे तो आंखें भी उसे देख सकें ?" नायक्कर ने कहा।

"हां," रामलिंग ने उत्तर दिया।

"क्या ऐसा कुछ भी नहीं जिसे मन के द्वारा अनुभव किया जा सके, पर इंद्रियों द्वारा नहीं ?" नायक्कर ने पूछा।

"आप बताइए," रामलिंग ने कहा।

"परमानंद," नायक्कर का उत्तर था।

"तब तो इंद्रियां मन को इस परमानंद की सूचना तो दे सकती हैं," रामलिंग बोले।

"हमारे संतों ने आंख, कान तथा अन्य इंद्रियों द्वारा अनुभूत परमानंद की चर्चा की ही है। पर इंद्रियां शारीरिक उपकरण हैं, जो शारीरिक आनंद को मन तक पहुंचाती हैं। पर परमानंद आत्मा का होता है, और इसकी अनुभूति केवल आत्मा ही कर सकती है।"

भीड़ में से कुछ विद्वान् ब्राह्मणों ने प्रश्न किया, "तो क्या ब्रह्म की अनुभूति मन के माध्यम से संभव नहीं है ?"

"नहीं, चूंकि ब्रह्म इस माया जगत से परे है और मन इस माया जगत में है।"

"तो फिर हम ब्रह्म की बात करते ही कैसे हैं ?" उन्होंने तर्क किया।

"ब्रह्म-ज्ञान आत्मज्ञान से ही संभव है, या फिर अत्मानुभूति से और आत्मा इसे स्वयं समझती है," रामलिंग ने कहा।

फिर भीड़ की ओर घूमते हुए रामलिंग ने आगे कहा, "कोई भी व्यक्ति मूर्ति-पूजा के बिना आत्मानुभूति नहीं पा सकता। यह मूर्ति-पूजन मन के अनुरूप

है। 'विग्रह' जो 'मूर्ति' का पर्याय है, का अर्थ है विशेष आवास। आत्मा का साधारण आवास मानव तथा अन्य जीवात्माओं का शरीर है। पर विशेष आवास वह है, जहां ईश्वर का प्रकाश स्थित है। ज्ञान के साधन के रूप में विग्रह को माना जा सकता है। सच तो यह है, कि ब्रह्म की इस रूप में अनुभूति का यह मार्ग उन लोगों द्वारा दिखाया गया है, जो मूर्ति-पूजा कर चुके हैं, और इसके माध्यम से ज्ञान को प्राप्त कर चुके हैं। ऐसे लोग जो परामानव शक्तियों को, जिनमें रोग-मुक्त करना, मृतक को जीवित करना आदि शामिल हैं, जीत चुके हैं।"

यह कहकर रामलिंग चले आये।

इस तरह रामलिंग ने उन तमाम छिछली बातों का स्पष्टत: खंडन कर दिया, जो इस सभ्य जगत में अक्सर उछाली गयी हैं। मूर्ति-पूजन का विरोध यह तर्क करता है कि आकार असीम ईश्वर को सीमाओं में बांधता है, और यह कहने वाले, 'कि विग्रह क्या है? सिर्फ पत्थर! मंदिर क्या है? सिर्फ पत्थर!' यह भूल जाते हैं कि वर्चस्व की भावना सीमित दृष्टिकोण की उपज हो सकती है। रामलिंग का कहना है कि ऐसा तर्क सैद्धांतिक रूप से सही हो सकता है, व्यावहारिक रूप से नहीं। वस्तुत: वे एक कदम और आगे बढ़ जाते हैं कि मूर्ति-पूजा उन व्यक्तियों के लिए भी प्रथम चरण हो सकती है जो इसका विरोध करते हैं। इस स्थिति से गुजरे बिना अंतिम आत्मबोध संभव नहीं। ईसा मसीह, बुद्ध जैसे दैवी पुरुष जिन्हें सारी मानवता पूजती है, परब्रह्म के जीवित प्रतीक के रूप में माने जा सकते हैं, जबकि मूर्ति जड़ प्रतीक कही जा सकती है। अपने एक प्रवचन में वे साफ-साफ कहते हैं :

> ध्यान किसी आकृति पर ही संभव है। संपूर्ण देवत्व पर यह संभव नहीं है। यह किसी न किसी आकृति (मूर्ति या प्रतीक) पर ही संभव है, निराकार पर नहीं। बाद में आकार निराकार में परिणत हो जायेगा। द्वैत की चरम परिणति अद्वैत है। इसकी प्रक्रिया यूं होगी, यदि उपासक नहीं रह जाता तो यह अद्वैत है। यदि आकार नहीं रह जाता तो यह और भी पराकाष्ठा है।

टिप्पणी :

लेखक का अनुमान है कि रामलिंग का उक्त कथन उनके अपने अनुभव से उद्भूत है, उपनिषद् से भी प्राधिकृत है। मंडूक उपनिषद् (मंडूक 3, खंड 2, श्लोक 3) :

> नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात्।
> एतैरुपायैर्यतते यस्तुविद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम॥

(बलहीन, लक्ष्यहीन के द्वारा आत्मा प्राप्त नहीं की जा सकती। न ही आकार के बिना की गयी तपस्या से। जिसकी आत्मा इन सभी उपायों के माध्यम से उसे प्राप्त करती है, वहीं पर वह ब्रह्मत्व को प्राप्त करती है।)

उपनिषद् और रामलिंग के कथन के बीच साम्य की ओर इसलिए संकेत किया गया है, क्योंकि शंकर (देखिये मुंडक और मांडूक्य उपनिषद्, पृ० 67, संस्करण स्वामी शरवाणानंद, प्रकाशक श्री रामकृष्ण मठ, मइलापूर, मद्रास, 1932) 'आलिगत' की व्याख्या करते हुए कहते हैं, "संन्यास-आश्रम के उचित लक्षण से रहित, उलझाने वाली अविश्वसनीय व्याख्याओं को छोड़ दिया जाये तो शब्द का अर्थ होगा 'निराकार'।" और फिर उनकी उलझाने वाली व्याख्याओं के अनुरूप वे 'तपस' शब्द का अर्थ 'ज्ञान' बताते हैं और इस तरह पूरी पंक्ति का अर्थ वे करते हैं, "संन्यास के बिना आत्म-ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।" स्वामी शरवाणानंद तुल्य अन्य व्यक्तियों ने उक्त मुद्दे पर इन शब्दों का अर्थ 'सही वैराग्य के बिना' या 'अनुचित वैराग्य द्वारा' कहकर अपने को बचा लिया। टी० एम० पी० महादेवन 'आलिगन' शब्द का अर्थ 'लक्ष्यहीन' (उपनिषद् अंग्रेजी अनुवाद, प्रकाशक, जी०ए० नटेशन कंपनी, मद्रास, 1950, पृ० 114) करते हैं। इन पंक्तियों के लेखक को वैदिक ऋचा का अर्थ (जो रामलिंग के वैयक्तिक अनुभूति से प्रेरित वक्तव्य के अनुरूप है) कुछ इस तरह लगता है कि ब्रह्म या ईश्वर की प्राप्ति मात्र मूर्ति-पूजा के माध्यम से संभव नहीं, हालांकि विद्वानों के श्रेष्ठ सैद्धांतिक दृष्टिकोण इसी पक्ष की ओर झुकते हैं।

रामलिंग के मत का समर्थन केनोपनिषद् (खंड 1, श्लोक 5, 6,7) इस प्रकार करता है :

वह जो मन की समझ से परे है, पर जिसके कारण मन बंधता है (जैसा कि योगी कहते हैं) वही ब्रह्म है, न कि वह जिसकी उपासना की जाती है।

वह जो आंखों से नहीं देखा जा सकता, पर जिसके कारण आंखें देखती हैं, वही ब्रह्म है, न कि वह जिसकी पूजा की जाती है।

वह जो कानों से नहीं सुना जाता, पर जिसके कारण कान सुनते हैं, वही ब्रह्म है, न कि वह जिसकी पूजा की जाती है।

15

गतिशील ध्येय

ऐसा लगता है कि करूंगुभ्री प्रवास के अंतिम वर्षों में 'सन्मार्ग संगम' की स्थापना के साथ रामलिंग को कदाचित लगने लगा था कि उन्होंने अपने आपको जीवन के महान लक्ष्य के लिए तैयार कर लिया है। ईश्वर से प्राप्त उनके ध्येय और ईश्वर के प्रति उनकी निष्ठा से प्रेरित होकर वे उपदेशक की तरह बोलने लगे थे :

संसार भर के मनुष्यों की
सहायता के लिए,
भीतर से
कलंकित और
दुग्ध धवल बाहर से,
उन्हें संवारने,
सही रास्ते पर लाने
की मेरी रही आकांक्षा,
ताकि वे पा सकें
आत्मा का संतोष यहां,
अभी इसी धरती पर;
ईश्वर ने भेजा है,
इसलिए यहां,
इसके लिए विशिष्ट
कृपा रही है,
ईश्वर की मेरे प्रति ।

उन्होंने निश्चित स्वर में कहा :

तुम्हारी आंखें दृश्यों को करती हैं
अनदेखा,
तुम्हाने कान बहरे,

आनंद तुम्हारे लिए भ्रम मात्र,
शरीर तुम्हारा गंदगी में,
तुम्हारा मन पक्षपाती,
हे संसार के पुरुषो,
तुमने खो दिया है सत्य !
सुनो लहरों का नाद,
बढ़ो अंतिम सत्य-पथ की ओर,
प्राप्त करो कृपा,
व्याप्त प्रखर सत्ता की;
ताकि पा सको तुम अमरत्व
हो सको प्रमुदित, हर्षित !

और भी :

मैं कहता हूं,
जो कहता है ईश्वर मुझसे,
न कुछ जोड़ता हूं,
न घटाता हूं,
सच, मेरे पास है कौन-सा ज्ञान,
जो ईश्वर ने न दिया हो !

सन् 1865 में 'सन्मार्ग संगम' की स्थापना करने के बाद वे करुंगुझी में दो वर्ष तक रहे। धार्मिक स्थलों में अक्सर घूमते रहे। कडलूर की यात्रा के दौरान एक बार उन्होंने संगम के शिष्यों से, निःशुल्क भोजन तथा आवास व्यवस्था की इच्छा प्रकट की। यह आवास देश, जाति, धर्म और आदत से निरपेक्ष सबके लिए खुला रहेगा। (करुणा पर लिखी गयी पुस्तिका में उन्होंने स्पष्टतः संकेत दिया है, कि करुणा-प्रधान कार्यों में यह अप्रासंगिक है।) उन लोगों ने इसके लिए कई स्थान सुझाये। अंत में, स्वयं वलल्लार ने (जैसा कि रामलिंग को आदर से कहा जाता है)वडलूर के उत्तर में एक मैदान चुना। चिदम्बरम से तीस किलो मीटर दूर इस गांव को पार्वतीपुरम भी कहते थे। यह मैदान दो प्रधान सड़कों के संधिस्थल पर था—एक मद्रास से कुंबकोणम, दूसरी मंजुकुप्पम से वृंदाचलम। सूचना पाते ही इस स्थान पर जिनकी भी ज़मीन थी (लगभग एक सौ आठ एकड़) उन्होंने अपनी जमीन दान में दे दी। यह कार्य दिनांक 2 फरवरी 1867 को किया गया, जिसमें चालीस भूमिपतियों के हस्ताक्षर थे। मिट्टी का एक अस्थायी भवन खड़ा किया गया। फूस के छप्पर तन गये।

उसी दिन पारंपरिक आयोजन के साथ अस्थायी आवास में लोगों के भोजन की व्यवस्था, स्थायी भवन-निर्माण की नींव, कुंआ खोदने का कार्य तथा जलाशय तैयार करने का कार्य भी प्रारंभ हो गया। लोगों में एक हजार निमंत्रण-पत्र बांटे गये। रामलिंग ने स्वयं अपने हाथों से निमंत्रण-पत्र तैयार किये। ये साधुओं के पास भेजे गये। कहा जाता है कि पहले तीन वर्षों में एक हजार छह सौ लोगों को खिलाया गया। आज भी हर भूखे आगंतुक को यहां मुफ्त भोजन दिया जाता है।

23 मई 1867 को भोजनशाला के उद्घाटन के दिन चिदम्बरम वेंकटसुब्बा दीक्षितर ने रामलिंग की पुस्तिका 'जीव कारुण्य ओभुक्कम' (जीव कारुण्य नियम) के कुछ अंश पढ़कर सुनाये। रामलिंग का प्रमुख धर्म था—जीव-कारुण्य। उनके अनुसार यह ईश्वर की ओर ले जाता है। उन्होंने कहा कि करुणा के दो पक्ष हैं—अहिंसा, इसमें मांसाहार-त्याग भी शामिल है, और भूखे को भोजन देना। करुणा पर उनकी पुस्तिका, मार्मिकता और संयमित वाग्मिता की पराकाष्ठा तक पहुंच गयी है।

इस निःशुल्क भोजनशाला का नाम रखा गया, 'समरस वेद धर्मशाला'। निःशुल्क धर्मशाला को तमिल में 'चलिरम' कहा जाता है। इस शब्द के अर्थगत ह्रास को देखते हुए उन्होंने शाला शब्द का चुनाव किया जिसका अर्थ है 'घर'। बाद में इस नाम को बदलकर 'समरस शुद्ध सन्मार्ग सत्व धर्मशाला' या 'सत्य धर्मशाला' (संक्षेप में) रख दिया गया।

इसी वर्ष उन्होंने 'सन्मार्ग बोधिनी' नाम से एक विद्यालय की स्थापना की। इस विद्यालय की विशेषता यह थी कि इसमें आयु से निरपेक्ष सभी का प्रवेश संभव था। लड़के और बूढ़े भी। तीन भाषाएं पढ़ायी जाती थीं—तमिल, संस्कृत और अंग्रेजी—इसी क्रम में विशेषतः। तोभुवूर वेलायुद मुदलियार, जो तमिल और संस्कृत के प्रतिष्ठित पंडित थे, साथ ही अंग्रेजी में भी पारंगत थे, इस विद्यालय के प्रभारी थे। पर यह विद्यालय बहुत दिनों तक नहीं चल सका।

इन्हीं दिनों रामलिंग ने 'सन्मार्ग विवेक वृद्धि' नाम की एक पत्रिका प्रकाशित करने की एक योजना बनायी। एक रूपरेखा जारी की गयी। इसमें एक मुसलमान बंधु कादर साहब सहित उनचास लोगों के हस्ताक्षर थे। पत्रिका प्रकाशन के लिए मासिक चंदा देने का भार इन लोगों ने उठाया था। पर यह पत्रिका कभी प्रकाशित नहीं हो सकी।

16

वडलूर में

सन् 1867 में निःशुल्क भोजनालय के उद्घाटन के बाद रामलिंग करूंगुझी छोड़कर वडलूर आये। भोजनालय ही अब उनकी समस्त गतिविधियों का केन्द्र हो गया था। यह संगम (भाईचारे) के कार्य तथा उपासना का केन्द्र बन गया। संध्या के समय वे दूर-दूर से आयी भीड़ के सामने प्रवचन देते। लोग उन्हें सुनते और अपनी तकलीफें उन्हें सुनाकर उनसे सलाह लिया करते।

भोजनालय के निर्वाह का भार श्री अप्पास्वामी चेट्टियार और उनके कुछ शिष्यों ने ले रखा था। जब भी रसद कम होती, वे उन्हें सूचित करते और वे उन से कहते, 'सुबह तक तुम्हारी आवश्यकताएं पूरी हो जायेंगी' और सचमुच ही अगली सुबह चावल और सब्जियों से लदी बैलगाड़ी द्वार पर खड़ी मिलती।

कुछ कविताओं में उनका चित्रण हमें मिलता है, जहां वे इस दौरान ईश्वर के साथ हुए साक्षात्कार का विवरण देते हैं :

मुझे याद है वह रात,
उतार दिये थे अपने
वस्त्र,
फैला दिये थे खुले में,
मैं लेट गया था
अर्धसुप्तावस्था में लीन।
तुम आये और
लगा लिया गले !
बोले, मत डरो वत्स !
तुम ले गये, विहंसते हुए
दूर कहीं, हे प्रभु,
और दी मुझे दैवी शक्ति,
हे पिता, स्वीकार करो
मेरी यह स्तुति !

अन्य कविताओं में वे बार-बार इस बात की पुष्टि करते हैं कि ईश्वर उनसे भोजनालय में मिलने आये और एक ही दर्शन में उन्हें यह सारा अनुग्रह और शक्ति दे डाली, जिसे पाने में उन्हें जन्म-जन्मांतर लग जाते।

खुले भवन में लोगों की भीड़ लगातार बढ़ती रहती और वे लोगों से घिरे रहते। वे अब इससे मुक्त होना चाहते थे और एकांत में अपने को और शक्तिशाली बनाना चाहते थे, पर वहीं वे यह भी चाहते थे कि अपना संदेश लोगों तक पहुंचा सकें। वडलूर से तीन किलोमीटर दूर एक छोटी-सी बस्ती थी, 'मेट्टुकुप्पम', जहां वे कई बार जा चुके थे। वहां के लोगों ने उनसे अपने साथ रहने का अनुरोध किया। इसलिए उन्होंने उनका आतिथ्य स्वीकार कर लिया और वहां चले गये।

मई 1870 में, वडलूर में चार वर्ष बिताने के पश्चात रामलिंग मेट्टुकुप्पम चले गये। वहां उन्हें वैष्णव पंथ के धर्मगुरुओं के विश्रामगृह में ठहराया गया। यह कई वर्षों से खाली पड़ा था। यह एक कमरे की छोटी-सी इमारत थी। इसका नाम उन्होंने 'सिद्धि विलगम' रखा और वहीं रहने लगे।

मेट्टुकुप्पम में रहते हुए उन्होंने योग और रहस्यचिंतन का अध्ययन किया, वे अपने ध्येय के प्रति सजग थे। वे प्रतिदिन वडलूर जाते और वहां अपने कार्यों और उसके परिणामों का निरीक्षण करते।

भोजनालय के पास उन्होंने लगभग पचास एकड़ का खुला मैदान चुना। इसका नाम रखा गया, 'उत्तरज्ञान चिदम्बरम'। उन्होंने अपनी कल्पना के अनुरूप एक मंदिर का कच्चा नक्शा खींचा। अष्टभुजाकार इस नक्शे को अपने शिष्यों को दिया और एक मंदिर बनवाने का आदेश दिया। जून 1871 में मंदिर-निर्माण का कार्य प्रारंभ हुआ। वे मेट्टुकुप्पम में ही रहे। वडलूर आते, भोजनालय का निरीक्षण करते, मंदिर-निर्माण का कार्य देखते और इन योजनाओं में अपना सुझाव देते। साथ ही, आध्यात्मिक विषयों तथा भाईचारे जैसे विषयों पर चर्चा करते।

वह चाहते थे कि उनके मंदिर के निर्माण में ही नहीं, नाम में भी पूर्णता हो। उन्होंने इसे 'कोईल' या 'मंदिर' नहीं कहा। उन्होंने इसे नया नाम दिया, 'सभा'। पूरा नाम था 'समरस शुद्ध सन्मार्ग सत्य ज्ञान सभा' या संक्षेप में 'सत्य ज्ञान सभा'। वे हर उस बात से बचना चाहते थे जिसका कोई धार्मिक अर्थ निकलता हो। पूरा का पूरा मंदिर भव्य प्रतीकात्मक था। 'सत्य सभा' अष्टभुजाकार थी। इसके अंदर-बाहर खंभों वाला कमरा था, जिसके अंदर चार खंभों वाला कमरा भी था। ज्ञान के भीतर परमतत्व के प्रकाश का यह प्रतीक है। चार फुट ऊंचा एक स्वच्छ दर्पण परमतत्व को प्रतिबिंबित करने के लिए लगाया गया था। यह आत्मशोधन का प्रतीक है। एक के पीछे एक, सात रंग के

पर्दे लगाये गये, जो इस लौकिक विश्व में माया के सात चरणों के प्रतीक हैं। यह आवरण भीतर के प्रकाश को सदैव ढंक देता है। ज्ञान और अनुग्रह के द्वारा इसको भेदना आवश्यक है। प्रत्येक कमरा, प्रत्येक दरवाजा, प्रत्येक वातायन, प्रत्येक खंभा, प्रत्येक मेहराब, प्रत्येक सीढ़ी, उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, परिधीय, केन्द्रीय, यहां तक कि प्रत्येक लकड़ी का तख्ता तथा जंजीर—एक प्रतीकात्मकता लिये था।

मंदिर 25 जनवरी सन् 1872 में खुला। रामलिंग उद्घाटन के समय उपस्थित नहीं थे। वे आत्मचिंतन में खो गये थे। वे चाहते थे कि यह अपरिचित सुख जिसे उन्होंने जाना है, वह लोगों तक पहुंच सके। सभा के उद्घाटन के अवसर पर जो घोषणा उन्होंने की, उसमें अपनी व्यक्तिगत अनुभूति का सत्य भी उन्होंने उंड़ेल दिया। नीचे हम उनके आरम्भ की कुछ पंक्तियां दे रहे हैं :

> मित्र, जिन्होंने मानव का दुर्लभ जन्म प्राप्त किया है, मैं जानता हूं यह कैसी उपलब्धि का समय है, क्योंकि अपने सारे प्रयासों के दौरान अब तक मुझे वह ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, जिसकी मुझे कोई कल्पना नहीं, ऐसी विशेषताएं जिसका कोई बिंब नहीं, शक्तियां जो मानवीय उपलब्धि से परे हैं, अनुभव जो अनुभूति से परे हैं, मैं उनकी सुखानुभूति करता हूं। मेरी इच्छा है कि यह महान आनंद आपका भी हो। आत्मा को अनंत में लीन करने की वह सजगता जो सन्मार्ग का उद्देश्य है, तथा जो आत्मा को आनन्द से भर देती है, इसे मैं आपको बताना चाहता हूं, ताकि आप भी इसे ठीक वैसे ही पा सकें जैसे मैंने प्राप्त किया है।

सभा की उपासना-पद्धति विशिष्ट थी। यह सभी जाति, धर्म, संप्रदाय के लोगों के लिए खुली थी। केवल मंसाहारी लोगों का प्रवेश वर्जित था। वे चाहें तो बाहर से उपासना कर सकते थे। उन्हें भीतर के कक्ष में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी जाती। केवल कुछ कार्यों के लिए जैसे पौधा लगाना, धोना, धूल झाड़ना, दिया जलाना, दिये में तेल डालना, जैसे कार्यों के लिए किसी को भी प्रवेश की अनुमति मिल सकती थी। इसके लिए उन्हीं लोगों को चुना जाता जो मांस नहीं खाते थे, हत्या नहीं करते थे, अपनी इच्छाओं और लिप्साओं पर विजय प्राप्त कर चुके थे, उनकी जाति और संप्रदाय का नाम-निशान नहीं था। उपासना के लिए फूल, चावल, फल, नारियल, दिया, भजन, कीर्तन, पुण्य जल या भभूत जैसे उपांगों की कोई आवश्यकता नहीं थी।

'शुद्ध सन्मार्ग सत्य चिरू विण्णधम' (सत्य सन्मार्ग के प्रति छोटा-सा आवेदन) में वे कहते हैं :

> हे प्रभो, परम महिमामयी !

वर दो, न हों हम प्रभावित
कर्मकांडों और ढोंगों से,
संप्रदायों और पंथों के
जाति और नियमों के
सांस्कृतिक ढोंगों से।

आत्मज्ञान की सजगता,
जो, आध्यात्मिक चिंतकों
की मूल जिज्ञासा है,
न हो लुप्त हममें,
कभी भी,
कहीं भी,
किसी भी तरह !
हमें वह सदा मार्ग दे,
गति दे।
हे परमब्रह्म ! आभारी हैं हम,
तुम्हारी अनुकंपा के,
हम पुनः आभारी हैं।

इस सभा का पुनर्नवीकरण कुछ पुनर्प्रतिबद्ध लोगों द्वारा 24 अप्रैल 1950 में कृपानन्द वारियार के नेतृत्व में किया गया।

17

मेट्टुकुप्पम—अंतिम चरण

मेट्टुकुप्पम आने के बाद दो वर्ष तक रामलिंग वडलूर के सत्य भवन के निर्माण में लगे रहे। 25 जनवरी 1872 में यह पूरा हुआ। इसके बाद उन्होंने धीमे-धीमे अपनी गतिविधियों को कम किया और अपने में सिमटने लगे। वे योगाभ्यास करते रहे, ब्रह्म-दंडिका-योग भी उन्होंने प्रारम्भ किया था—दो चूल्हों के बीच बैठकर योग-साधना करना। एक गीत में वे ईश्वर के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि एक नाज्भिगै (चौबीस मिनट का तमिल समय) में ही योग की स्थिति को प्राप्त करने में उन्हीं की कृपा रही है :

> एक शाम
> एक नाज्भिगै में ही,
> तुमने पहुंचा दिया
> योग की नीति में,
> अगले ही दिन
> चखा दिया तूने
> परिणाम।

तमिल भूमि के सिद्धों की ही तरह उन्होंने भी सिद्धि अथवा देवत्व को प्राप्त करने की स्थिति को जीवन का उद्देश्य बताया, न कि मुक्ति या जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्त होने की स्थिति को। जहां एक ओर उन्होंने मुक्ति की पारंपरिक और वैदिक परिकल्पना का अनुमोदन किया, वहीं उन्होंने यह भी बताया कि यह अंतिम लक्ष्य नहीं है। बल्कि सिद्धि की ओर यह केवल उपांतिक चरण है, जो देवत्व में निहित है। उनके अनुसार 'मुक्ति' और सिद्धि' एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, 'मुक्ति' अस्तित्व की दिशा में परिपक्व अवस्था है, और 'सिद्धि' स्वयं अस्तित्व है। परम ब्रह्म के प्रति की गयी स्तुति में वे कहते हैं :

> परम प्रकाश ! जिसने
> मुक्ति को ईश्वरत्व के

माध्यम के रूप में,
जताया,
मुक्ति को सिद्धि के
उपांग चरण के रूप में,
और सिद्धि,
वह लक्ष्य है, अनुभूति की स्थिति।

अभिलेखानुसार अक्तूबर 1870 को सहसा एक दिन वे अंतर्ध्यान हो गये और कुछ दिनों तक वैसे ही रहे ! अपने शिष्यों और अनुयायियों को आश्वस्त करने के लिए उन्होंने अनुदेश देते हुए उन्हें पूर्व-चेतावनी दे दी :

ईश्वर की महिमा है। विश्वास रखो कि एक व्यक्ति कइयों के कल्याण का माध्यम भी बन सकता है। विश्वास रखो कि मेरे द्वारा तुम लोगों को अभीप्सित फल की प्राप्ति होगी। कुछ ही दिनों में, ईश्वर की कृपा से मेरा शरीर तुम लोगों की दृष्टि से ओझल हो जायेगा। तुम लोग धैर्य रखना। डरना नहीं। भोजनालय को विश्वास के साथ चलाना। सब ईश्वर की ही कृपा है।

वडलूर को यह संदेश पहुंचाकर उन्होंने मेट्टुकुप्पम में अपने को कमरे में बंद कर लिया। कहा जाता है कि कमरे में वे कई दिनों तक बंद रहे और उनके बारे में तब तक न कुछ देखा गया, न सुना गया, जब तक वे पुनः प्रकट नहीं हुए। यह बात ध्यान देने योग्य है कि अपनी कविताओं और प्रवचनों में वे ठोस शरीर में, तीन तरह के पवित्र शरीर, शुद्ध, प्रणव तथा ज्ञान के वैषम्य का हवाला देते हैं। इसे क्रमशः सूक्ष्म, मानस, और बुद्धि भी कह सकते हैं। तीन शुद्ध शरीरों में, उनकी व्याख्या के अनुसार पहला (सूक्ष्म शरीर) मांस-मज्जा की सीमाओं जैसे रोग, बुढापा, शरीरिक क्रियाओं से परे है, क्योंकि इसकी प्रतिच्छाया तक नहीं। दूसरा (मानस शरीर) देखा तो जा सकता है, पर उसे ग्रहण नहीं किया जा सकता; तीसरा (बुद्धि या बौद्धिक शरीर) अल्पांतर में दिखायी देता है और समयातीत है।

उनके अनुयायिगों का कहना था कि वे चित्र खिचवाने के विरुद्ध थे, और उनका चित्र आठ बार उनसे छिपाकर खींचा गया था ! पर चित्र नहीं आ पाया, केवल कपड़े में लिपटी धुंधली आकृति ही आ पायी। अन्त में 'पण्णुरुट्टी' के एक मूर्तिकार ने उनकी मिट्टी की मूर्ति बनायी और उन्हें दिखाया। कहा जाता है कि रामलिंग ने टिप्पणी करते हुए कहा, 'तो सोने का शरीर माटी का हो गया।' (तमिल में 'सूक्ष्म शरीर' को 'सोने का शरीर' भी कहते हैं।) यह भी कहा जाता है कि आज रामलिंग के जो भी चित्र उपलब्ध हैं वे इसी मूर्ति के हैं। कई कवि-

ताओं और गीतों में रामलिंग अमर शरीर की प्राप्ति के लिए की गयी प्रार्थनाओं, प्रयासों तथा अंत में अन्य परामानव शक्तियों के सहित उसे प्राप्त करने की अंतिम सफलता की चर्चा करते हैं :

देखा मैंने अपने पिता को,
और अमरत्व[1] पा लिया,
निश्चित ही, दैवी शक्तियां
हुई मेरी,
और मैं हो गया
आत्मा का दावा !

और आगे :

कोई मृत्यु नहीं है मेरे लिए !
ईश्वर मुझमें समा गया है,
और मैं उसमें, निर्विशेष होकर—
हम एक हैं ! आश्चर्य है,
कैसे हुआ यह सब,
हे संसार के पुरुषो !
भागी बनो मेरे साथ,
इस चरम आनन्द के
और मुक्त हो जाओ सभी दुखों से।

कई स्थानों पर वे घोषित करते हैं कि ईश्वर ने उन्हें स्वयं अपनाकर अपना पुत्र बना लिया है :

देखो उन मनुष्यों को,
जो भटक गये हैं,
संप्रदायों और सिद्धांतों में,
धर्म के व्यर्थ खेल से
खिलवाड़ करो,
जो बांधती है जाल में विश्व को,
अबोध बच्चों की तरह !
जो, फंसकर

1. इसका अर्थ शरीर की शाश्वतता में है, उस अमरता से नहीं जो साधारणतः समझी जाती है।

मर रहे हैं, बिना परिणाम के !
न हो कोई जीवन
अब व्यर्थ,
जलाओ ज्योति उनके भीतर की,
ले चलो, सच्चे ज्ञान की ओर,
सच्चे आनन्द की ओर !
मेरे स्वामी, कहा था तूने,
तेरे पास भेजता हूं,
उन्हें, मेरे पुत्र।
हे परम प्रकाश, ज्वालापुंज,
अज्ञान को दूर करने वाले,
अरूपा से लेकर
नाद के आनन्द में
व्याप्त स्वामी !

तथा :

हे मां, अपार है महिमा तेरी,
वह आनन्द जो दिया तूने मुझे,
वह नाम जो तूने दिया,
बुलाया मुझे अपना पुत्र !
और रोप दिया मुझे
शुद्ध ज्ञान और सत्य
के मार्ग पर।

इस आत्मविश्वास में पूर्ण आनन्दातिरेक की तुलना तैत्तरीय उपनिषद् की निम्नांकित पंक्तियों से कर सकते हैं :

ब्रह्म को प्राप्त करने पर एक साधु ने घोषणा की, 'मैं जीवन हूं। मेरा वैभव हिमालय के शिखर की तरह है। मैं ब्रह्म की शुद्धता में अधिष्ठापित हूं। मैंने अहं से मुक्ति प्राप्त कर ली है। मैं ब्रह्म हूं, आत्मप्रबुद्ध, सबसे अधिक देदीप्यमान निधि हूं। मैं प्रबुद्ध हूं। अमर हूं, अविनाशी हूं।'

(अनु० स्वामी प्रभवानंद तथा फ्रेडरिक मैनचेस्टर)

इस अवधि में रामलिंग द्वारा रचित कविताओं और गीतों में (जो उनकी मृत्यु के छह वर्ष बाद सन् 1880 में प्रकाशित हुए, 'श्री कृपा-ग्रंथ' के छठे अनुभाग के रूप में) जैसा कि तिरूऊरान अडिगल की मान्यता है, यदि हम 'श्री कृपा-

ग्रंथ' को ज्ञान का साक्षात शरीर मान लें, तो यह छठा अनुभाग मुख होगा, परम प्रकाश के प्रति स्तुति—आंखें और मंत्र 'अरूट्पेरुम्ज्योति' (परम प्रकाश तत्व) शिष्य की भांति। 'अहवल' छंद में रचित यह स्तोत्र, 1596 पंक्तियों का है, जो तमिल कविता का एक अपूर्व आयाम है। इसका रचनाकाल है, 18 अप्रैल 1872।

इसी अवधि में रामलिंग ने गद्य में 'परम प्रकाश के प्रति याचिकाएं' भी लिखीं। उन्होंने अब फिर पंथ के अभिमतों को प्रतिज्ञापित करने वाले परिपत्र जारी किये। 30 मार्च, 1871 को 'भवन के लिए अनुदेश' में निम्नांकित बातें हैं :

> यदि किसी का शरीर कार्यों के भार से या समय के कारण नष्ट हो जाता है, तो उस शरीर को जलाना नहीं चाहिए। उसे तो गाड़ देना चाहिए। पूरा विश्वास होना चाहिए कि मृतक जरूर उठेगा। दुख और प्रलाप नहीं करना चाहिए। यदि एक स्त्री अपने पति को खो देती है, तो उसके गले में पति के द्वारा बांधा गया मंगलसूत्र पड़ा रहने दो। यदि एक पुरुष अपनी पत्नी को खो बैठता है, तो उसे पुनर्विवाह की नहीं सोचना चाहिए। यदि किसी का पुत्र मर जाता है, तो शोक नहीं मनाये। मृतक के लिए कोई क्रिया, कर्म या संस्कार नहीं किये जायें। वे सभी लोग, जिन्होंने इन दुखों को झेला है, एक दिन एकत्रित हों और जिसे हो सके, निःशुल्क भोजन दें।

मेट्टुकुप्पम में दिये गये प्रवचनों में अपने सिद्धांतों की उनके ही शब्दों में की गयी व्याख्याओं का संकलन, उनके शिष्यों ने एक पुस्तिका 'स्पोकन वर्ड्स आफ ग्रेस' में प्रस्तुत किया है। इसमें निम्नलिखित पंक्तियां हैं :

> संसार में कई धर्म हैं। सबके अपने ईश्वर हैं, पंथ हैं, विधान और आत्मानुभूति की अपनी पद्धतियां हैं—हमने सुना है, कि वे उस एक ही सत्य के विविध रूप हैं, जो हमारे सत्य मार्ग का लक्ष्य है। इसलिए यह उचित है कि तुम उनके पवित्र शब्दों पर विश्वास करो, उन शब्दों के पीछे सत्य को पहचानो और उनके सभी कर्मकांडों, ढोंगों का विरोध करते हुए उनके सत्य को अपनाओ।

उनका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंतिम प्रवचन, जिसे 'महान प्रवचन' भी कहा जाता है, 22 अक्तूबर 1873 को उनकी मृत्यु के तीन माह पूर्व दिया गया। वह भाषण उनके मेट्टुकुप्पम वाले घर पर 'सिद्धि विलगम' पंथ के ध्वजारोहण समारोह के अवसर पर दिया गया। यह ध्वजा, योग सिद्धों के अनुभव के अनुसार नाभि से लेकर दोनों भौंहों के मध्य दौड़ने वाली रहस्यात्मक शक्ति का प्रतीक है। यह भाषण कई दृष्टियों से स्पष्ट है। और रामलिंग के अंतिम विकास की

अवस्था का परिचायक है। उन्होंने उद्बोधित करते हुए कहा :

अब तक जिस तरह करते आये हो, उस तरह अपना समय व्यर्थ मत गंवाओ।···अपने को आध्यात्मिक जिज्ञासा में लगाओ।

जिज्ञासा यूं है, हमारी मानवीय स्थिति क्या है ? उन शक्तियों की प्रकृति क्या है जो हमसे परे हैं, और हमें परिचालित करती हैं ?

हमारे पारंपरिक वेदों, पुराणों और आगमों के अनुसार अपने को नियत और स्थिर मत कर लेना। इनमें केवल अखिल ब्रह्मांड में लघु ब्रह्मांड की विशेषताओं को उभारा गया है।

परामानव शक्तियों को प्राप्त करना संभव है, चमत्कारों को दिखाना भी संभव है। पर इन्हें लक्ष्य मत बनाओ। ये छोटी-छोटी उपलब्धियां मायने नहीं रखती। वे तुम्हें बड़ी उपलब्धि से विमुख कर सकती हैं। इसलिए इनसे अनाकर्षित रहकर, उसी परम ब्रह्म में ध्यान लगाओ।

इसी तरह धर्म पर अंधविश्वास मत रखो। वे तुम्हें सच्चे ज्ञान से उत्पन्न आध्यात्मिक अनुभूति नहीं प्रदान करते। शैव धर्म के प्रति मेरे विश्वास को बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कहा जा सकता।

मेरी पुस्तकों में प्रकाशित मेरी रचनाएं, और स्तुतियां ही इसकी साक्षी हैं। मेरा वह गहन विश्वास उस समय केवल इसलिए था कि मुझे सच्चे ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई थी।

अब ईश्वर ने मुझे पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया है। यह इसलिए संभव हुआ कि मैंने इन सबको त्याग दिया। तुम भी अगर यह सब त्याग दोगे, तो देवत्व को प्राप्त कर सकोगे।

···पर वह क्या था, जिसने मुझे ऊपर उठाया ?
···यह थी करुणा या अनुकंपा।
···इस करुणा की प्राप्ति विश्व-एकता की भावना से ही संभव है। यही भावना मनुष्य को करुणावान बना सकती है। अब मेरा ज्ञान इस घूमते हुए विश्व से परे है।

जब तक तुम अनुभव नहीं करोगे, तुम्हें किसी वस्तु के स्वाद का पता नहीं चल सकता। जिस वस्तु के स्वाद का तुम्हें ज्ञान नहीं, उसके प्रति तुम आकर्षित नहीं हो सकते। इसी तरह, जब तक तुम ईश्वरत्व के आनन्द की अनुभूति नहीं प्राप्त करते तब तक तुम ईश्वर के प्रति आकर्षित नहीं हो

सकते। इसलिए यह आवश्यक है कि तुम ईश्वर को जानने की उत्कट आकांक्षा और लक्ष्य को अपने भीतर पाल लो।

···यदि इस जिज्ञासा के साथ तुम जीना प्रारम्भ करो तो ईश्वर तुम्हारे पास आयेगा और तुम्हारे अनुरूप वह ज्ञान के द्वार को खोलता जायेगा। जैसे-जैसे तुम आगे बढ़ोगे, वह तुम्हें और अधिक ज्ञान प्राप्त करने का अवसर देगा। मेरे बाद, फिर तुम्हारे पास कोई परामर्श के लिए नहीं आयेगा। इस-लिए उदासीनता के रास्ते पर मत चलो। यही मेरे अंतिम शब्द हैं, तुम्हारे लिए···।

यहां यह ध्यान दिया जाये कि, उनके काव्य में भी, उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य यही रहा है—मनुष्य का पुनरुद्भवन तथा दैवीकरण। अपने अनुयायियों के प्रति एक हल्का-सा असंतोष भी देखा जा सकता है, यह भोजनशाला के लिए भेजे गये परिपत्रों में और भी साफ दृष्टिगोचर होता है, इनमें एक भद्र-सा किन्तु स्पष्ट और निश्चित विरोध है। इसी संदर्भ में रामलिंग कभी-कभी अपने शिष्यों से कुछ लोगों के आने की बात किया करते थे, जो उनके साथ 'थियोसोफिकल सोसाइटी' का भी ध्यान रखेंगे !

18

रामलिंग का स्वर्गवास

सभा और मंदिर के निर्वाह के प्रति रामलिंग का असंतोष इतना बढ़ गया कि 1873 में इसे बंद करने का उन्होंने निश्चय कर लिया। इसके उद्घाटन के छह माह के भीतर ही 18 जुलाई 1872 को उन्होंने इसके निर्वाह के लिए लिखित अनुदेश जारी किये थे। उनके अनुसार उपासक केवल प्रवेश-द्वार पर ही उपासना कर सकते हैं, भीतर कक्ष में सफाई और दीप जलाने के हेतु प्रवेश करने वालों की आयु बारह के नीचे या बहत्तर से ऊपर होनी चाहिए। उन्होंने अपने अनुयायियों को इस कार्य के उपयुक्त नहीं पाया। सभा को बंद करने के बाद चाभी उन्होंने अपने पास 'सिद्धि विलगम' में ही रख ली। उनकी मृत्यु के चार वर्षों बाद तक मंदिर बंद रहा। 'बंधुत्व' के अनुयायियों ने इसे फिर से खोला और 1878 में फिर उपासना प्रारंभ की।

सभा के बंद होने के बाद 22 अक्तूबर 1873 को 'सिद्धि विलगम' में एक महान प्रवचन हुआ। इसके बाद उनकी बाहरी गतिविधियां समाप्त हो गयी। इसी के प्रतीक स्वरूप अगले ही माह नवंबर 1873 को उन्होंने अपने कमरे से ज्योति-दीप निकालकर बाहर रखवा दिया। अपने अनुयायियों से उन्होंने कहा, (जैसा कि अभिलेखबद्ध है) "बिना किसी बाधा के तुम लोग यहां उपासना कर सकते हो। मैं अपने कमरे का दरवाजा बंद करूंगा। कुछ समय के लिए ईश्वर इसी लौ के रूप में प्रकाशित होते रहेंगे। तुम लोग इस अवसर का लाभ उठाओ, समय व्यर्थ मत गंवाओ। 'स्मरण करो, पुनः उसका स्मरण करो', यह गीत प्रार्थना के लिए उपयुक्त होगा।"

इस कथन से कि 'कुछ समय ईश्वर इस लौ के रूप में प्रकाशित होते रहेंगे', ऐसा लगता है कि रामलिंग को ईश्वर के आगमन और अपने अंत का आभास हो गया था। इसी समय लिखे गये एक गीत में ये भाव स्पष्ट होते हैं :

संसार के जीव,
हम जो उसके पास पहुंचते हैं,
कृपा अमृत के दाता;

हमारे प्रभु, हमारे रक्षक,
सद् के कोष, सत्य के
संतुलित नर्तक !
हम, जो सदैव और निरंतर
उसकी स्तुति करते हैं,
और श्रद्धा रखते हैं,
उसी का चिंतन लगातार करते हुए,
उसकी उपस्थिति को,
उसके स्नेह को, सदैव अनुभव करते हुए,
अश्रुपूरित नेत्रों से हम कहते हैं, 'सुनो' !
यह समय है, उसके आने का
हमें प्रदान करेगा एक शाश्वत
दैवी जीवन !
समय आ गया है अब कि हम पहुंचे ईश्वरत्व के समीप,
सत्य है यह,
कोई छलावा नहीं है ।

सच था यह ! कम-से-कम रामलिंग के संदर्भ में तो यह सच ही था । यथार्थ में न सही, लाक्षणिक अर्थों में तो था ही । वे अपने अगले गीतों में इसकी पुष्टि करते हैं :

समय आ गया है,
उसके आने का,
और स्थापित करेगा
वह सत्य को ।

वह प्रज्ज्वलित दीपक, जिसे उन्होंने अपने कमरे से बाहर सन् 1873 में रख दिया था, आज भी जल रहा है । हजारों उस दीप-स्तंभ को देखने के लिए आते हैं । साथ ही वडलूर के दूसरे दीप-स्तंभ को भी देखने के लिए भीड़ उमड़ती है ।

दीप-स्तंभ को बाहर रखने के बाद रामलिंग ने अपने को कमरे में बंद कर लिया था । वे अपने कमरे में दिनों तक बंद रहते थे । कुछ दिनों के लिए बाहर आते और उन दिनों लोगों से बात करते और प्रवचन देते । यही क्रम तीन माह तक चलता रहा । अपने देहांत की पूर्व-सूचना उन्होंने लोगों को दे दी थी । उन्होंने कहा, (जैसा कि अभिलेखबद्ध है) "मैंने अपनी दुकान खोली । कोई खरीदार

नहीं रहा। यह बंद हो जायेगी। अब मैं इस शरीर में हूं। जल्दी ही सारे शरीर मेरे हो जायेंगे।"

फिर आया शुक्ल पक्ष की अष्टमी का शुक्रवार, 30 जनवरी 1874. जैसे ही रात गहराने लगी, उन्होंने अपने अनुयायियों को एक साथ बुलवाया और कहा (जैसा कि अभिलेखबद्ध है) :

> मैं कमरे में दस-पंद्रह दिनों के लिए बंद रहूंगा। कमरे की ओर देखकर उत्सुक मत होना। यदि ऐसा करोगे—तो कुछ नहीं दिखेगा। ईश्वर स्वयं इसका ध्यान रखेंगे कि ऐसा ही हो। वे मुझे दृष्टिगोचर नहीं होने देंगे।

मध्य रात्रि के समय रामलिंग ने वहां एकत्रित लोगों को अपना अंतिम आशीर्वाद दिया, उन्हें सत्य ज्ञान का पंथ अपनाने तथा परम ब्रह्म की कृपा प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। इसके बाद वे कमरे के अंदर चले गये और अपने को बंद कर लिया। इसके बाद वे कभी नहीं देखे गये। उनके अनुयायियों का कहना है कि वे परम प्रकाश में लीन हो गये, या वे ईश्वर में एकाकार हो गये। उनके गीत में व्यक्त कुछ भावी संभावनाओं के आधार पर उनके शिष्यों ने स्थापित किया कि ढाई 'नाज्भिगै' (लगभग एक घंटे) में उन्होंने देवत्व की स्थिति को प्राप्त कर लिया :

> आज वह आया है,
> आज बैठेगा वह, वहां,
> जहां बैठता हूं मैं,
> और ढाई नाज्भिगै में,
> वह लीन हो जायेगा मुझमें,
> और बैठ जायेगा मेरी
> आत्मा में,
> जहां रहेगा वह चिर-निवासी !
> यह घोषणा करता हूं मैं,
> जानता हूं मैं,
> घोर तपस्या से यह बात !
> जान लो इसे सत्य रूप में,
> इसका सत्य शीघ्र आयेगा सामने,
> ढाई नाज्भिगै में केवल !

अंतिम घोषणा की पुनरावृत्ति कविता की दस पंक्तियों में दस बार हुई है। रामलिंग के देहांत से खलबली मच गयी और कई तरह की अफवाहें फैलने

लगीं। अंत में सरकार ने इस मामले को उठाने का निर्णय लिया। मई 1874 में, उनके देहांत के तीन माह बाद, दक्षिणी आर्काट जिले के कलेक्टर श्री जे० एच० गार्सिटिन, आई० सी० एस० तथा राजस्व बोर्ड के सदस्य श्री जार्ज बनबुरी, आई०सी०एस० 'सिद्धि विलगम' पहुंचे। उनकी उपस्थिति में कमरा खोला गया। यह खाली था। वे कमरे के चारों ओर गये। कुछ भी सुराग हाथ नहीं लगा। उन्होंने बीस रुपये भोजनशाला को दान में दिये और लौट गये।

मद्रास डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स—दक्षिणी आर्काट जिला (1906 : पृ० 316-317) में रामलिंग के जीवन के विषय में एक संक्षिप्त विवरण प्रकाशित हुआ, जिसके कुछ अंश नीचे उद्‌धृत किये गये हैं :

> पार्वतीपुरम : 1,189 निवासियों का एक छोटा-सा गांव जो वृद्धाचलम सड़क पर वडलूर के दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। इस स्थान का संबंध एक रामलिंग संन्यासी से था, जो बाद में चलकर साधु हुए तथा बाद में उनके अनुयायियों ने उन्हें देवत्व की संज्ञा दी। ऐसा लगता है कि रामलिंग संन्यासी ने अपने अनुयायियों से बार-बार कहा था कि वे मर कर फिर जी उठेंगे, और वे निरंतर आग्रह करते रहे कि दाह-संस्कार की अपेक्षा दफनाना कहीं अधिक श्रेयस्कर है। कहा जाता है, इसी विश्वास पर ब्राह्मणों को भी दफनाया गया। उन व्यक्तियों को जिन्होंने दूसरे गांवों में अपनी यह लीला समाप्त की, वडलूर लाकर दफनाया गया। सन् 1874 में उन्होंने अपने को उस कमरे में बंद किया (जो मेट्‌टुकुप्पम में आज भी है) जिसमें वे अपनी समाधि लगाया करते थे, और अपने शिष्यों को आदेश दिया कि वे कुछ समय तक इसे न खोलें। इसके बाद वे नहीं रहे। उनका वह कमरा आज भी बंद है। यह उन लोगों की मान्यता है जो इस बात पर विश्वास करते हैं कि वे ईश्वर में एकाकार हो गये हैं, तथा कभी-न-कभी प्रकट होंगे।

उनके एक शिष्य दंडपाणि स्वामिगल ने एक कविता के ग्यारह पदों में, इस बात को दोहराया है कि रामलिंग ने स्वयं अपने पुनरागमन की बात उनसे कही है। कई लोगों ने इस विश्वास को व्यक्त किया है।

दंडपाणि स्वामिगल ने एक और रोचक विवरण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार रामलिंग 'तायुमानवर' (एक प्रमुख संत, जो सोलहवीं शताब्दी के अंत में हुए थे) के अवतार हैं। जैसा कि प्रत्येक संत से जुड़े मिथकों के साथ होता है, उनके अनुयायियों के अनुसार रामलिंग कई बार स्वप्न में देखे गये, कभी यथार्थ में, कभी उनके जीवित अस्तित्व के प्रमाण भी उन्हें मिले।

रामलिंग ने अपने संपूर्ण जीवन को आध्यात्मिक खोज की यात्रा के रूप में, एक कविता में चित्रित किया है। यह कविता मेट्‌टुकुप्पम प्रवास के अंतिम दौर में

लिखी गयी थी :

गहराई को नाप लिया मैंने,
जा पहुंचा किनारे पर,
पा लिया मैंने,
वह दरवाजा,
जो खुलता है, उस परम तत्व की ओर !
पा ली वह दृष्टि मैंने
जो हर ले सभी पीड़ाओं को,
पा लिया मैंने वह प्रकाश
जो प्रज्ज्वलित करे बुद्धि को,
मिला शाश्वत शरीर मुझे,
सभी शक्तियां हुईं मेरी,
वश में हुईं
शरीर की सीमाएं,
आत्मा का आनन्द ।
उस महान नर्तक का हुआ अनुग्रह
मुझ पर !

यह कविता टेनीसन की 'क्रॉसिंग द बार' की याद दिलाती है :

सूर्यास्त और शाम का पहला तारा,
मेरे लिए एक स्पष्ट आह्वान !
कोई न हो बाधा,
जब मैं समुद्र के पास जाऊं !

वे जो समय और स्थान की
परिधि से परे हैं,
यह लहर मुझे ले जायेगी दूर तक !
मैं देख सकूंगा अपने संवाहक को
आमने सामने !
जैसे ही पार कर लूंगा,
यह बाधा ।

दोनों का साम्य आश्चर्यजनक है, साथ ही दोनों का वैषम्य भी ध्यान देने योग्य है—एक कवि की अपने संवाहक को देखने की कामना और एक संत की, देख चुकने के बाद की दृष्टि !

19

रामलिंग और थियोसोफिकल सोसाइटी

मेट्टुकुप्पम के अंतिम दिनों में रामलिंग धर्म से विमुख हो गये थे और उस विश्व-बंधुत्व के प्रचारक हो गये थे, जो सभी जीवात्माओं में (केवल मनुष्यों में ही नहीं) आत्मा की एकात्मकता पर आधारित है। ईश्वर की परिकल्पना उन्होंने परम प्रकाश के रूप में की है, जिसकी प्रकृति ही करुणा है, तथा मानव इसे तभी प्राप्त कर सकता है, जब ऐसी ही करुणा अपने स्तर पर अपने भीतर उतार ले। रामलिंग ने सभी धार्मिक सिद्धांतों, पाखंडों, अनुष्ठानों का विरोध किया। उन्होंने घोषणा की कि उनका मार्ग सच्चे ज्ञान का मार्ग है, इसी सर्वोत्कृष्ट आत्मा की सभी जीवों और संपूर्ण विश्व में विभिन्न स्तरों पर अनुभूति और प्रत्यक्षीकरण तथा धर्मों से परे ज्ञान की बात वे करते हैं। विश्व-बंधुत्व का सिद्धांत, तथा सभी धर्मों की एकरूपता की बात थियोसोफिकल सोसाइटी के समान है, यद्यपि थियोसोफी की दृष्टि रामलिंग की तरह निर्जीव विश्व को नहीं अपनाती तथा करुणा की आत्मोत्थान और ईश्वरत्वदायिनी शक्तियों पर बल नहीं देती। सन् 1865 में वडलूर में उन्होंने 'समरस वेद सन्मार्ग संगम' की स्थापना इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर की। सन् 1872 में सभी धार्मिक अर्थों और संयोजनों से परे रहने के उद्देश्य से उन्होंने पंथ का नाम बदलकर, 'समरस शुद्ध सन्मार्ग सत्य संगम' रख दिया। इसी तरह भोजनालय तथा विद्यालय के नाम भी उन्होंने बदल कर रखे। स्पष्टतः तो यही कहा जा सकता है, कि उनके द्वारा संबोधित परम प्रकाश, शिव के ही अमूर्त रूप हैं, जैसा कि उनके काव्य से प्रमाणित होता है, जिसमें वे परम प्रकाश को शिव के विशेषणों से संबोधित करते हैं, जैसे, अंतरिक्ष के नर्तक, अंतरिक्ष के स्वामी, नटराज इत्यादि ! पारंपरिक हिन्दू धर्म के अनुसार भी शिव को परम प्रकाश अथवा परम ज्योति माना गया है।

थियोसोफी के उपदेश भी लगभग वही हैं, जो रामलिंग के हैं। देखा जाये तो उनके द्वारा स्थापित 'समरस वेद सन्मार्ग संगम' को भी न्यूयार्क में दस वर्ष बाद सन् 1875 में स्थापित थियोसोफिकल सोसाइटी का भारतीय प्रतिरूप माना जा सकता है। थियोसोफी की मूल परिकल्पना उपनिषद् की आत्म विद्या से निकली है, जो संपूर्ण विश्व को परमात्मा का ही मूर्त रूप मानती है। यह कर्म,

पुनर्जन्म तथा आध्यात्मिक विकास जैसी हिन्दू धर्म की परिकल्पनाओं से भी उद्‌भूत है। थियोसोफी हिन्दू धर्म की तरह यह मानकर चलती है कि पूर्ण पवित्रता और अथक प्रयास द्वारा मनुष्य अपने को उस परम तत्व से जोड़ सकता है। यह ऐसे आत्मज्ञान-प्राप्त पुरुषों को, जिन्हें महात्मा, साधु या प्रवर्तक कहा जाता है और जो विशेष अंतर्दृष्टि के साथ पैदा होते हैं, मान्यता प्रदान करते हैं। यह उन सभी धर्मों की एकता की घोषणा करता है, जिनका सार एक है, और वह है, ईश्वरीय प्रज्ञा की प्राप्ति। यही स्वयं रामलिंग की शिक्षा थी, जो स्वयं महात्मा या साधु थे। उनकी मान्यता थी कि सत्य के सार तत्व को उद्‌घाटित करने वाले सभी धर्म एक हैं। उन्होंने इस सार तत्व को एक नया नाम दिया 'सत्य सन्मार्गम्' जिसका अर्थ है, सच्चा ज्ञान अथवा सच्ची विश्वात्मिकता। सभी धर्म इसी के आधार पर विभिन्न रूप और प्रकृति के अनुरूप एक ढांचा तैयार करते हैं। यह मार्ग उनसे भिन्न था। वे इन्हें अभिवृद्धि और मिथ्या मानते हैं, तथा इन्हें रद्द कर देते हैं। उन्होंने अपनी सभा के मूल नाम से वेद शब्द को हटाकर उसे 'सत्य सन्मार्ग संगम' नाम दिया। सन्मार्ग को उन्होंने ईश्वर, जीवन और विश्व के साथ आत्म-साक्षात्कार द्वारा उसकी प्राप्ति के मार्ग के रूप में परिभाषित किया है। उनके अनुसार पहला और एकमात्र चरण करुणा का ही हो सकता है जिसके माध्यम से ईश्वर की अनुकंपा प्राप्त की जा सकती है। यह करुणा जड़ के प्रति भी होनी चाहिए।

थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना 7 सितंबर 1875 को न्यूयार्क में हेलेना पेट्रोवना ब्लावत्सकी द्वारा हुई, जिसने बार-बार यह दावा किया कि तिब्बत के प्रवर्तकों, गुरुओं और संतों द्वारा वह जनता को उपदेश देने के लिए बुलायी गयी थी। कर्नल हेनरी एस० आलकॉट सोसाइटी के पहले अध्यक्ष तथा मैडम ब्लावत्सकी पहली सचिव थीं।

तोभुवूर वेलायुद मुदलियार जो रामलिंग के प्रथम और सर्वाधिक विख्यात शिष्य थे, मैडम ब्लावत्सकी और कर्नल ऑलकाट से उनके मद्रास-प्रवास के दौरान मिले। उस समय वेलायुद मुदलियार मद्रास के प्रेसिडेंसी कालेज में तमिल के पंडित थे। उन्होंने सोसाइटी को अंग्रेजी में एक वक्तव्य दिया, जिसका समर्थन मद्रास के स्मालकॉज कोर्ट के न्यायाधीश तथा मद्रास थियोसोफिकल सोसाइटी के उपाध्यक्ष श्री० जी मुथुस्वामी चेट्टी ने किया। यह वक्तव्य 'हिन्ट्स ऑन एसो-टेरिक थियोसोफी' नामक पुस्तक तथा 'दि थियोसोफिस्ट' पत्रिका के जुलाई 1882 के अंक में प्रकाशित हुआ। इसका पुनर्प्रकाशन इसी पत्रिका के सितंबर 1969 के अंक में हुआ। इस वक्तव्य के कुछ अंश नीचे दिये गये हैं :

('हिन्ट्स ऑन एसोटेरिक थियोसोफी' के लेखक को)

महोदय,

निवेदन है कि मैं स्वर्गीय 'अरूलप्रकाश वल्ललार' जो चिदम्बरम रामलिंग पिल्लै अवरगल के नाम से भी जाने जाते हैं, तथा दक्षिण के माने हुए योगी हैं, का शिष्य हूं। यह जानकर कि अंग्रेजी समाज तथा कुछ हिन्दू भी महात्माओं के अस्तित्व पर संदेह करने लगे हैं, और थियोसोफिकल सोसाइटी उनके विशेष आदेशों पर स्थापित की गयी है। आपने हाल में महात्माओं के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क प्रस्तुत करने की दिशा में पर्याप्त काम किया है। मैं अपने स्वर्गीय गुरु के संबंध में कुछ तथ्यों को प्रस्तुत करना चाहता हूं। मेरा विश्वास है कि उन्हें ऐसी सभी आशंकाओं का उन्मूलन करना होगा ताकि थियोसोफी को कोरा भ्रम या सोसाइटी को असुरक्षित नींव पर स्थापित न कहा जाये।

इसके बाद रामलिंग के जीवन, व्यक्तित्व तथा उपदेशों का एक संक्षिप्त विवरण देते हुए वेलायुद मुदलियार आगे कहते हैं :

सन् 1867 में उन्होंने एक समाज की स्थापना की, जिसका नाम था 'समरस वेद सन्मार्ग संगम' जिसका अर्थ था एक ऐसा समाज जो विश्व-बंधुत्व के सिद्धांतों पर आधारित हो। साथ ही, वैदिक सिद्धांतों का उचित प्रचार हो। यहां यह कहना अनावश्यक होगा कि ये सिद्धांत थियोसोफिकल सोसाइटी के समान ही हैं। हमारा समाज पांच-छह वर्षों तक ही चल पाया, पर इसी अवधि में इसके सदस्यों के खर्च पर बहुत-से भूखे गरीब लोगों को निःशुल्क भोजन की व्यवस्था की गयी।···

1873 के प्रथम अर्द्धांश में उन्होंने विश्व-बंधुत्व से संबंधित अपने विचारों को सबसे अधिक आग्रह के साथ प्रचारित किया। पर वर्ष के अंतिम चार महीनों में उन्होंने भाषण देना एकदम बंद कर दिया और एक अविराम चुप्पी साध ली। जनवरी 1874 के अंतिम दिनों में वे फिर से अपने उपदेशों को दोहराने लगे। उसी माह की तीस तारीख को, मेट्टुकुप्पम में हमने अंतिम बार अपने गुरु को देखा था।···उन्होंने वादा किया था कि वे फिर कभी लौटेंगे, पर वे समय, स्थान तथा परिस्थिति का कोई उल्लेख नहीं करेंगे। तब तक, वे न केवल भारत में ही बल्कि यूरोप, अमेरिका और अन्य देशों में भी काम करते रहेंगे···यही वादा था उनका !···

अपने लौकिक जीवन के अंतिम दिनों में वे अक्सर आश्चर्य व्यक्त करते, 'विश्व बंधुत्व के सच्चे सदस्य सुदूर उत्तर में रहते हैं···वह समय दूर नहीं जब रूस, अमेरिका तथा अन्य देशों से लोग आयेंगे और तुम्हें इसी विश्व–

बंधुत्व का उपदेश देंगे।···

उनकी यह भविष्यवाणी, मेरी दृष्टि में अब पूरी हो गयी है। यह तथ्य कि महात्मा उत्तर में रहते हैं, हमारे लिए कोई नयी बात नहीं है (यानी हम हिन्दुओं के लिए)। यह विचित्र-सा सत्य है, कि मैडम ब्लावत्सकी तथा कर्नल आलकॉट के रूस और अमेरिका से आने की बात कई वर्ष पूर्व बतायी गयी थी। यह निर्विवाद प्रमाण है कि मेरे गुरु का उन महात्माओं से संपर्क रहा है, जिनके आदेश पर थियोसोफिकल सोसाइटी की नींव रखी गयी।

यहां यह बता दिया जाये कि वेलायुद मुदलियार के वक्तव्य की सत्यता पर कई विद्वानों ने प्रश्नचिह्न लगाया, विशेष रूप से कुछ विशेष देशों के नाम के उल्लेख के कारण।

जुलाई 1882 के 'दि थियोसोफिस्ट' के अंक में, जिसमें उक्त वक्तव्य प्रकाशित हुआ था, निम्नांकित संपादकीय भी प्रकाशित हुआ :

जब एक खुली चुनौती के प्रत्युत्तर में 'दि आकल्ट वर्ल्ड' के लेखक ने 'बंबई गजट' (4 अप्रैल, 1882) में लिखा था, तो अपने पत्र की शुरुआत निम्नलिखित विश्वास के साथ की थी, 'जब मैंने 'दि आकल्ट वर्ल्ड' लिखा, तब मैं यह अच्छी तरह जानता था कि थियोसोफिकल सोसाइटी मैडम ब्लावत्सकी के माध्यम से मेरे द्वारा उल्लेखित बंधुत्व के संतों से जुड़ी है। मैं जानता हूं, यह ज्ञान के प्रवर्धन के साथ जुड़ा हुआ मामला है।' हमारे निष्ठावान मित्र ने इन पंक्तियों को लिखते समय, सोचा होगा, कि एक दिन उनके दावों का समर्थन हजारों प्रमाण करेंगे। पर आज स्थिति इस प्रकार है। अविश्वासी तथा पूर्वाग्रही अथवा पक्षपाती साक्ष्य अपनी इच्छानुसार निंदा करते हैं। पर तथ्यों का खंडन नहीं किया जा सकता। हमारे मित्र—तथा वे कुछ लोग जो हमें न तो पागल करार देते हैं, न ही धोखेबाज मानते हैं—कम-से-कम निम्नांकित वक्तव्य को पढ़कर खुश तो हो ही सकते हैं···हमें यहां उन प्रश्नों को दोहराने की छूट नहीं है, जो साक्षात्कारकर्ताओं ने हमसे पूछे, बल्कि यहां कुछ ऐसे तथ्यों को प्रस्तुत करना चाहते हैं, जो हमारे उन निश्चयों का समर्थन करेंगे कि (1) हमारा समाज भारतीय तथा तिब्बती संतों के सुझाव पर स्थापित किया गया, तथा (2) इस देश में आते हुए हमने केवल उनके आदेशों का पालन किया है।

वेलायुद मुदलियार के वक्तव्य के बाद मैडम ब्लावत्सकी की टिप्पणी है, जिसे 'दि थियोसोफिस्ट' के जुलाई 1882 अंक में प्रकाशित किया गया था :

यह किसी आगामी घटना की भविष्यवाणी का मामला है, जिसमें कि

अविश्वास-जन्य आशंकाओं के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। इस साक्ष्य के सम्माननीय चरित्र, उनके गुरु की घोषणाओं का व्यापक प्रचार, तथा किसी तरह की अफवाह या पत्रिका द्वारा, थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना तथा भारत में उसकी गतिविधि के संबंध में किसी पूर्व-सूचना की असंभाव्यता—ये सारी बातें इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि रामलिंग योगी किसी-न-किसी रूप में उन परामर्शदाताओं से जुड़े थे जिन्होंने हमें इस सोसाइटी की स्थापना के आदेश दिये हैं।

मार्च 1873 में हमें आदेश दिया गया कि हम रूस से पेरिस की ओर रवाना हों। जून में हमें संयुक्त राज्य की ओर जाने का आदेश मिला, जहां हम 6 जुलाई को पहुंचे। यही वह समय है, जब रामलिंग आगामी घटनाओं की भविष्यवाणी कर रहे थे। अक्तूबर 1874 में हमें चिट्टेंडन, वर्माट जाने का आदेश मिला, जो एडी परिवार की प्रसिद्ध वास-भूमि है। कर्नल आलकॉट उन दिनों अपने इस शोध में लगे थे, जिसे आज अध्यात्म के इतिहास में इतना अधिक महत्व दिया जाता है—आत्मा का भौतिकीकरण। नवंबर 1875 में थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना की गयी, पर 1878 के बाद ही भारतीय मित्रों से कोई पत्राचार हो पाया, परिणाम यह हुआ कि फरवरी 1879 में[1] सोसाइटी का मुख्यालय बंबई स्थानांतरित किया गया।

1. 1882 में मुख्यालय बंबई से मद्रास स्थानांतरित किया गया।—लेखक

20

रामलिंग का 'सच्चा ज्ञान'

इस अध्याय का शीर्षक 'रामलिंग का धर्म' रखा जा सकता था, पर 'धर्म' शब्द को उन्होंने अंतिम वर्षों में अभिशाप से कम नहीं माना और अपने उपदेशों में से सभी धर्मों का निषेध कर दिया था, पर उनका बीज तत्व अवश्य संभालकर रख लिया, जिसे वे 'सच्चा ज्ञान' कहते थे। और इसी को वे परम प्रकाश मानते थे। इसी तरह उपनिषद् यह घोषणा करती है कि आत्म-विद्या से ही आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

परम प्रकाश के संबंध में रामलिंग की धारणा ऋग्वेद की 'गायत्री' में देखी जा सकती है। चौबीस अक्षरों का 'गायत्री मंत्र' सामान्यत: वैदिक दर्शन का सार-तत्व माना जाता है। मात्र चौबीस अक्षरों का यह मंत्र उदात्त आध्यात्मिक जिज्ञासा का प्रतीक है, जो किसी भी बुद्धिजीवी के जीवनपर्यंत आध्यात्मिक विकास के लिए पर्याप्त है।

1867 में रामलिंग की भेंट चिदम्बरम में उन्नीस वर्ष के युवक सभापति शिवाचार्य से हुई। यह युवक रामलिंग के प्रति आकर्षित हुआ। वह 1869 में वडलूर आया और वहीं रामलिंग का श्रेष्ठतम शिष्य होकर रह गया। अंत में रामलिंग के 'सत्य ज्ञान सभा', 'सत्य भवन' का पुजारी होकर रहा। वडलूर में अपनी प्रारंभिक मुलाकातों में शिवाचार्य ने रामलिंग से 'गायत्री मंत्र' की व्याख्या करने को कहा, जिसकी व्याख्या रामलिंग ने की।

ऋग्वेद का यह मंत्र, जिसे गायत्री या सूर्य गायत्री कहते हैं, दो अर्थ वहन करता है, पहला अर्थ दूसरे अर्थ को स्पष्ट करता है, जो मंत्र का वास्तविक अभि-प्राय है।

1. हम ध्यान करें सूर्य की उस प्रभा का, जो सभी जीवों में जागृति लाता है।

2. हम ध्यान करें उस परम प्रकाश का, जो सभी जीवों को चेतना (ज्ञान) का प्रकाश प्रदान करता है।

जिज्ञासु को निरंतर आंतरिक सूर्य या चेतना के आंतरिक प्रकाश पर ध्यान लगाना होगा, जो तीन अवस्थाओं में मनुष्य के भीतर होता है—जागृत, सुषुप्त

तथा सुप्त। बाहरी सूर्य इसी भीतरी सूर्य का प्रतिरूप है। यह भीतरी चेतना सभी प्राणियों में व्याप्त सारतत्व है।

वृहदारण्यक उपनिषद् (7वां ब्राह्मण अथवा तीसरे अध्याय का अनुभाग) का निम्नांकित अंश, जो भव्यता के लिए उल्लेखनीय है, गायत्री का अर्थ समझने में सहायक होगा :

> वह जो सूर्य (आदित्य) में निवास करता है, अथवा सूर्य में निहित है, जिसे सूर्य नहीं जानता तथा जिसका शरीर स्वयं सूर्य है, जो सूर्य पर शासन करता है, वही तुम्हारी आत्मा है, और भीतर का शासक (अंतर्यामिन्) अनश्वर है।
>
> वह जो चंद्रमा और नक्षत्रों (चंद्रतारकम्) में निवास करता है, जो उनके भीतर है, जिसे चंद्रमा और नक्षत्र नहीं जानते, जिसका शरीर स्वयं चंद्रमा और नक्षत्र है, जो भीतर के चंद्रमा और नक्षत्रों पर शासन करता है, वही तुम्हारी आत्मा है, भीतर का शासक अनश्वर है।
>
> वह जो अंधकार (तमस्) में निवास करता है, और अंधकार के भीतर है, जिसे अंधकार नहीं जानता, जिसका शरीर अंधकार है, तथा जो भीतर के अंधकार पर शासन करता है, वही तुम्हारी आत्मा है, और भीतर का शासक अनश्वर है।
>
> वह जो प्रकाश (तेजस) में निवास करता है, और प्रकाश के भीतर है जिसे प्रकाश नहीं जानता, जिसका शरीर प्रकाश है, और जो भीतर के प्रकाश पर शासन करता है, वही तुम्हारी आत्मा है, और भीतर का शासक अनश्वर है।
>
> वह जो सभी प्राणियों में निवास करता है, सभी प्राणियों में है, जिसे प्राणी नहीं जानते, जिसका शरीर सभी प्राणी हैं, जो सभी प्राणियों पर शासन करता है, वही तुम्हारी आत्मा है, और भीतर का शासक अनश्वर है।
>
> वह जो मनुष्य में रहता है, और मानस के भीतर है, जिसे मन नहीं जानता और जिसका शरीर मन है, तथा जो भीतर के मन पर शासन करता है, वही तुम्हारी आत्मा है, और भीतर का शासक अनश्वर है।
>
> वह जो बुद्धि में निवास करता है (विज्ञान) तथा बुद्धि के भीतर है, जिसे बुद्धि नहीं जानती, जिसका शरीर ही बुद्धि है, तथा जो भीतर रह कर बुद्धि पर शासन करता है, वही तुम्हारी आत्मा है और भीतर का शासक अनश्वर है।
>
> (अनु० मैक्समूलर)

यही विचार तैत्तरीय उपनिषद् में और भी सारगर्भित रूप में अभिव्यक्त हुआ है (111, 10-14) :

वह जो मनुष्य के भीतर करता है निवास,
और वह जो है सूर्य में प्रकाशित
एक ही हैं दोनों।

'गायत्री मंत्र' को ईशावास्योपनिषद् के निम्नांकित श्लोक से और भी अधिक सार्थकता मिलती है (श्लोक 16) :

हे पालक, दृष्टा, सबके नियंत्रक
देदीप्यमान सूर्य,
सभी प्राणियों के जीवनदाता,
अपने प्रकाश को समेट लो,
क्या मैं देख सकता हूं,
तुम्हारा स्वरूप ?
जो हैं वहां—
वह भी मैं हूं स्वयं।

गायत्री के दोनों अर्थों के बीच का साम्य—सूर्य को प्रेरक तथा जीवन के रक्षक के रूप में देखने तथा आत्मा को जीवन के चेतना बीज के रूप में देखने को तैत्तरीय उपनिषद् में बहुत ही उत्कृष्ट रूप में कहा गया है :

ब्रह्म को जीवन, गति एवं चिंतन का स्रोत मानकर उस पर ध्यान लगाना चाहिए। वैभव की भव्यता है वह, तथा नक्षत्रों का प्रकाश है। सर्वस्व वही है।

'गायत्री मंत्र' ब्रह्म ध्यान के लिए अप्रतिम मंत्र है। मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही बनता है। विचारों को पवित्र करने तथा उनके उत्थान के लिए आंतरिक और बाहरी प्रकाश के रूप मे गायत्री एवं आत्मा पर ध्यान लगाने का आदेश दिया जाता है।

ईश्वर पर ध्यान स्थिर करने की शक्ति को बढ़ाने के लिए, या यूं कहें कि ईश्वर को अंतर्विष्ट करने के लिए, प्रारंभिक वर्षों में रामलिंग ने दर्पण में प्रतिबिंबित दिये की लौ का प्रयोग किया था। बाद में उन्होंने वडलूर के भवन तथा सिद्धि-विलगम में ऐसे दर्पण लगवाये।

कठोपनिषद् कहता है कि शरीर में रहने वाली आत्मा में ब्रह्म को दर्पण में एक पृथक् प्रतिबिंब के रूप में देखा जा सकता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि मनुष्य की आत्मा कोई अवास्तविक प्रतिबिंब है। इसका तात्पर्य उस पवित्रता से है, जो आत्मा के रहने के स्थान, शरीर के लिए आवश्यक है, यदि आत्मा को

उसमें ही प्रतिबिंबित होना है। यह पवित्रता शरीर के औचित्य पर निर्भर है, कि वह आत्मा को स्थान दे सके, उदाहरण के लिए मानव शरीर, किसी कुत्ते के शरीर से अधिक उपयुक्त होता है। और फिर :

> दर्पण की ही तरह (ब्रह्म को साफ देखा जा सकता है) इस शरीर के भीतर, एक स्वप्न की तरह, पितरों के देश में जल की तरह, गंधर्वों के देश में प्रकाश और छाया की तरह (जिस तरह प्रकाश अंधकार से पृथक् दृष्टिगोचर होता है) ब्रह्म लोक में। (कठोपनिषद् 6, श्लोक 5)

शरीर और दिये के प्रतीक को ठीक-ठीक समझने के लिए उपनिषदों की ओर ही लौटना होगा :

> जिस तरह वह दर्पण, जिसमें चमक तो हो, पर धूल से गंदला हो गया हो, साफ कर दिये जाने पर चमक उठता है, इसी तरह मनुष्य आत्मा के स्वरूप को साफ देख लेने के पश्चात अपने उपलब्ध लक्ष्य के साथ एकाकार हो जाता है तथा दुखों से मुक्त हो जाता है। योगस्थिति को प्राप्त कर लेने के बाद जब ब्रह्म के स्वरूप को पूरी तरह जान लेता है, उस आत्मा के माध्यम से, जिसकी तुलना दिये से की जा सकती है, तब वह अजन्मे, स्थिर और निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है।
>
> (श्वेतास्वतारा उपनिषद्, 11, 14 व 15)

ब्रह्म के स्वरूप की लगभग सही अभिव्यक्ति, विश्व सत्य, पूर्ण अनुभव से परे, अतिसूक्ष्म तत्व है, जो सभी विशेषणों से, सभी परिवर्तनों से, सभी व्यक्तिगत आवरणों से परे है, जो आत्म-प्रदीप्त एवं मुक्त है, उसे सत्, चित्, आनंद तथा तेजस् या ज्योति भी कहते हैं। पहला शब्द तीन शब्दों से मिलकर बना है। सत् से तात्पर्य सत्य या पवित्र से है। या मात्र अस्तित्व या आत्म अस्तित्व से। चित्—पूर्ण चेतना या पूर्ण बुद्धि या पूर्ण ज्ञान कहा जा सकता है, और आनंद—पूर्ण आनंद। दूसरा शब्द 'तेजस्' या 'ज्योति' विवरणात्मक है, जिसका अर्थ है, प्रकाश या 'दीप्ति'; कोई गूढ़ार्थ नहीं है। मैक्समूलर की व्याख्या के अनुसार, ब्रह्म की अति-सूक्ष्म भाषा में यदि व्याख्या की जाये तो यही कहा जा सकता है कि वह प्रकाश है, जैसे चेतना का प्रकाश। 'चित्' शब्द की व्याख्या मैक्समूलर 'चेतना के प्रकाश' के रूप में करते हैं, इसे 'ज्ञान का प्रकाश' या 'बुद्धि का प्रकाश' भी कहा जा सकता है। मुंडक उपनिषद् (11, 9 व 10) कहता है :

> परम प्रकाश में वह अनुभवातीत, निर्मल परमब्रह्म निहित है। वह पवित्र है, संपूर्ण प्रकाश का प्रकाश है। यही आत्मजिज्ञासुओं को समझना होगा।
>
> सूर्य अपने तेज से प्रकाशित नहीं होता, न चंद्रमा, न नक्षत्र, न ही विद्युत्, न यह अग्नि। ब्रह्म के प्रकाश से ये प्रकाशित होते हैं, उसी का प्रकाश

इनमें व्याप्त है।

दार्शनिक कवि भर्तृहरि ने गायत्री के अर्थ को इस तरह समेटकर प्रस्तुत किया है :

> नमस्कार है उस पूर्ण प्रकाश को, जिसका आकार चित् है, संपूर्ण है, समय और स्थान की सीमाओं से परे है, और केवल अनुभव से ही जिसका साक्षात्कार संभव है। (नीति शतक)

रामलिंग ने बुद्धि को भीतर की ज्योति के अन्दर की ज्योति में स्थित ज्योति के रूप में वर्णित किया है। व्यक्ति की आत्मा का सबसे बाहरी प्रकाश, करुणा का प्रकाश तथा भीतरी प्रकाश उस परम ब्रह्म का प्रकाश है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि व्यक्ति की आत्मा करुणा के प्रकाश के माध्यम से परम ब्रह्म के प्रकाश से प्रकाशित होती है।

21

रामलिंग की कविता

श्री रामकृष्ण ने कहा था, "भ्रमर पुष्प के चारों ओर केवल तब तक गुनगुनाता है, जब तक शहद को चख नहीं लेता। एक बार चख लेने के बाद उसका गुनगुनाना बंद हो जाता है।"

ठीक यही बात रहस्यवादी और धार्मिक उपदेशकों के साथ होती है जो स्वयं का दिव्य ज्योति के साथ निश्शब्द समाधि द्वारा संपर्क कर लेते हैं। जब वे कुछ बोलना चाहते हैं, पहले या बाद में, उसका परिणाम आवश्यक नहीं कि कविता ही हो, या अव्वल दर्जे की कविता हो। परंतु कवि, रहस्यवादी या तांत्रिक के ठीक विपरीत अव्यक्त की अभिव्यक्ति की ओर प्रवृत्त होता है। इसी प्रकार जब रहस्यवादी कविता के प्रति आकर्षित होते हैं, अक्सर शब्दाडम्बरों में पड़ जाते हैं, अथवा दृष्टांतों के सरल मार्ग द्वारा स्वयं को संप्रेषित करते हैं। इन दृष्टांतों में विचार अक्सर किसी खास ढंग से सामने आते हैं। पर वे कविता नहीं हैं। दूसरी ओर, महान कवि अपनी दृष्टियों की अभिव्यक्ति में अपनी दृष्टियों से आनंददायक सौंदर्य को गढ़ते हैं। उपदेशकों की उक्तियां, कुछ सीमा तक कविता की तरह लगती हैं। हम यहां बुद्ध और ईसा की कविता को साफ पहचान सकते हैं। पर उन्हें कोई भी शेक्सपियर या मिल्टन या वाल्मीकि या कालिदास से मिलाने की बात नहीं सोच सकता।

रामलिंग एक अनोखे अपवाद हैं। वे न केवल प्रकाश-पुत्र बुद्ध और रामकृष्ण के साथ हैं, बल्कि वे गीत-पुत्र कीट्स, शैली, ब्लेक या टेनीसन के साथ भी हैं, जिनकी रचनाओं में संगीत है—साथ ही वे उन कवियों के साथ भी हैं जिन्होंने भाषा को समृद्ध और शक्तिशाली बनाया। भारतवर्ष में ही, ऐसे अनेकों संत हैं, जिन्होंने अपने ग्रंथों में संपूर्णता का लघुरूप अथवा यादृच्छिक पद्य लिखा है। पर रामलिंग के लिए यह अनायोजित नहीं है। बल्कि संपूर्ण कला के रूप में है। मेरी जानकारी में ऐसा कोई संत या उपदेशक नहीं है, जो रामलिंग की तरह एक महान कवि भी हो।

उनके स्तोत्रों और गीतों में अव्यक्त आनंद की उपस्थिति का प्रमाण यही है कि ऐसे लोग जो संतों की उक्तियों पर कभी ध्यान नहीं देते, या संतों की

जिज्ञासाओं या प्रयासों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं रखते, जो संतों के विचारों, चिंतन तथा बिंबों के प्रतिमानों तथा दिशा के प्रतिकूल हैं, वे भी रामलिंग की कविताओं का आनंद कविता के रूप में ले सकते हैं। उनके शब्द-जाल का सम्मोहन कुछ ऐसा ही है, उनकी उक्तियों का आनंद ही कुछ ऐसा है। बिना किसी प्रयास के एकदम नैसर्गिक, गीतात्मकता से ओतप्रोत, संवेदनात्मकता से भरपूर, प्रगाढ़ता से पूर्ण जिसमें मानवता और आध्यात्मिकता एकाकार हो, विचारों के प्रवाह को आलोकित करती हुई एक शब्द या पंक्ति भी इधर-उधर न भटकने वाली उनकी कविता, शुद्ध मानवीय संदर्भों में पढ़ी जा सकती है। लुइ अन्टरमेयर ने टेनीसन की कविता के संदर्भ में जो कहा था, वह रामलिंग की कविता के संदर्भ में बखूबी कहा जा सकता है, "कुछ ही कवि ऐसे हैं, जिनके पास धीमी और कोमल ध्वनियों के लिए सुंदर कान हैं, उनमें से भी कुछ ऐसे हैं, जो उसकी स्वाभाविक तरंगात्मकता, उसकी निर्मल गीतात्मकता तथा कभी-कभी उसके अप्रतिम संगीत की तुलना में आगे बढ़ पाये हैं।"

रामलिंग, प्रमुख देशभक्त कवि सुब्रह्मण्य भारती (1882-1921) के पूर्वज के रूप में तमिल आधुनिक कविता के प्रवर्तक रहे। भारती रामलिंग के उत्तराधिकारी रहे। संत-कवि पूरी तरह से अलग और विस्तृत ढांचे के हैं। उनकी कविताओं में हमें वह ज्योति मिलती है, जिससे बाद में भारती ने अपनी ज्योति प्रज्ज्वलित की। रामलिंग एक नयी, सादी, प्रांजल, और सजीव तमिल के स्वामी थे। नये छंदों, गीतों और पदों के पिता थे, जिसे बाद में भारती ने अपनाया। इस प्रकार वे भारती तथा तमिल पुनर्जागरण के कवि-गुरु थे। तमिल के विद्वान व आलोचक आर० एस० देशिकन लिखते हैं (तमिल में, जिसका अनुवाद लेखक ने यहां किया है), "तमिल जगत महान रामलिंग को कभी नहीं भूल सकता, जिन्होंने तमिल में नये छंदों और संगीत को प्रचलित किया। वर्तमान युग के प्रथम कवि सुब्रह्मण्य भारती रामलिंग के प्रवर्तित मार्ग पर चल रहे हैं। यह बात उन विद्यार्थियो को आसानी से समझ में आयेगी, जो उन्हें गहराई से पढ़ते हैं।"

संक्षेप में, रामलिंग वर्तमान तमिल पुनर्जागरण के अग्रदूत हैं, जिसके आधुनिक स्वर हैं—सुब्रह्मण्य भारती। रामलिंग-भारती के युगल को गांधी-नेहरू अथवा रामकृष्ण-विवेकानंद की जोड़ी के समकक्ष ही माना जा सकता है। इसके माध्यम से दोनों के संबंधों का परिमाण प्राप्त हो सकेगा।

रामलिंग की कविता के स्तर के विषय में उनके शिष्य तोझुवूर वेलायुद मुदलियार की यह श्रद्धांजलि उद्धृत करना पर्याप्त है :

> कैसे कहूं अपने
> गुरु के अपार करुणा उद्गार,

रामलिंग के वचनों
का अमृत ?
क्या कहूं मैं उसे
आकाश का संचित सार ?
पका हुआ फल,
मधु की मिठास ?
गन्ने का मधुर रस,
परितृप्ति रहित शर्करा
या द्राक्षारस—
शरीर, सवेदना और
आत्मा को आच्छादित करने वाली
वह प्रगाढ़ता
ज्ञान का आनंद !

22

रामलिंग के जीवन की घटनाओं का कालानुक्रम

1823	5 अक्तूबर	दक्षिणी आर्काट जिले में चिदम्बरम के निकट मरुदूर में जन्म ।
1824	मार्च	माता-पिता द्वारा चिदम्बरम के मंदिर में भगवान नटराज के सामने लेकर जाना, जिसकी स्मृति उनके मस्तिष्क में बनी रही ।
	अप्रैल	उनके पिता रामय्या पिल्लै की मृत्यु ।
	जून	उनकी माता चिन्नम्मै का मद्रास के निकट चिंगलपेट जिले के पोन्नेरी गांव चले जाना । शीघ्र ही उनका अपने ज्येष्ठ पुत्र सभापति पिल्लै के पास रहने को मद्रास के लिए प्रस्थान ।
1828		आवारागर्दी के लिए भाई द्वारा भोजन से इंकार। और भाभी पार्वती का चुपके से उनकी देखभाल करना । शीघ्र ही भाई से रामलिंग को स्वीकृति प्राप्त करने में सफल हो जाना ।
1832		दर्पण में तणिगै मंदिर के भगवान मुरुगन के दर्शन। उसके पश्चात दैवी मुलाकातों के प्रति सजग हो जाना। गीत लिखना प्रारंभ करना । पहला गीत, मद्रास के कंदस्वामी मंदिर के भगवान स्कंद पर।
1835		रामलिंग का आध्यात्मिक संघर्ष प्रारंभ । मद्रास से दस किलोमीटर दूर तिरुवोत्तियूर मंदिर के भगवान त्यागराज (शिव का वैरागी रूप) की स्तुति में गीत रचना ।
1849		तोभुवूर के वेलायुद मुदलियार का, जो बाद में प्रेसिडेंसी कालेज मद्रास के तमिल पंडित बने, रामलिंग का शिष्य बन जाना ।
1850		रामलिंग का उनकी बहन उण्णामलै अम्माल की पुत्री

		धनम्माल के साथ विवाह ।
1851		सभापति मुदलियार द्वारा संत कण्णुडैय वल्लल के 'ओभिविल ओडुक्कम' का रामलिंग के संपादन में प्रकाशन ।
1854		पालयम सुब्बराय चेट्टियार द्वारा धार्मिक शिक्षा समाज के लिए रामलिंग की गद्य रचना 'मनुमुरै कंद वाचकम्' का प्रकाशन ।
1855		कोन्नूर अय्यासामी मुदलियार द्वारा पडिक्कासान कवि की 'तोंडमंडल शतकम्' का रामलिंग के संपादन में प्रकाशन ।
1857		सभापति मुदलियार और मदुरै मुदलियार द्वारा मुत्तैया स्वामिगल के 'चिन्मय दीपिकै' का रामलिंग के संपादन में प्रकाशन ।
1858		रामलिंग मद्रास से सीरगाभी, वैथीस्वरन कोइल के तीर्थों का दर्शन करते हुए मरुदूर के निकट करूंगुभी को प्रस्थान ।
		उनके बड़े भाई परशुराम पिल्लै का, जो करूंगुभी में रहते थे, देहांत । रामलिंग का (करूंगुभी में) वेंकट रेड्डियार के घर में अतिथि के रूप में वास ।
		उनका अक्सर चिदम्बरम तथा अन्य तीर्थ स्थलों की यात्रा करना ।
1865		रामलिंग द्वारा 'समरस वेद सन्मार्ग संगम' की स्थापना ।
1867	16 जनवरी	पण्णै नदी के किनारे, तिरुप्पापुलियूर में ब्रह्म समाज के नेता श्रीधर स्वामी नायक्कर के साथ तर्क ।
	2 फरवरी	वडलूर (चिदंबरम से तीस किलोमीटर दूर) के चालीस भूमिपतियों द्वारा गरीबों के लिए भोजनालय की स्थापना हेतु एक सौ आठ एकड़ भूमि रामलिंग को भेंट ।
	फरवरी	इरुक्कम के रत्न मुदलियार, पांडीचेरी के वेलु मुदलियार, सेल्वरायपुरम के शिवानंद मुदलियार के निरंतर प्रयासों के परिणामस्वरूप, मइलापुर के सोम-सुंदरम चेट्टियार के वित्तीय सहयोग से तोभुवूर वेलायुद मुदलियार द्वारा 'तिरुअरूट्पा' (करुणा का

		ग्रंथ) शीर्षक से उनकी संकलित रचनाओं की पहली चार पुस्तकों का विमोचन।
	23 मई	'समरस वेद धर्मशालै' की स्थापना। उद्घाटन के समय वेंकटसुब्ब दीक्षितर द्वारा रामलिंग की पुस्तिका 'जीवकारुण्य ओभुक्कम' का पाठ।
		रामलिंग द्वारा 'सन्मार्ग बोधिनी' नाम से एक विद्यालय की योजना। 'सन्मार्ग विवेक वृद्धि' नाम की मासिक पत्रिका की भी योजना। दोनों योजनाएं असफल।
		रामलिंग द्वारा करूंगुभ्भी से वडलूर के लिए प्रस्थान।
1869		सभापति शिवाचार्य (बाद में रामलिंग के सत्य ज्ञान सभै के प्रथम पुजारी बने) तथा 'अरुट् पेरुम ज्योति अहवल' (परम करुणामय के प्रति स्तोत्र) के प्रकाशक का वडलूर में रामलिंग के साथ जुड़ना।
1870		रामलिंग का वडलूर से समीपस्थ गांव मेट्टुकुप्पम के लिए प्रस्थान, जहां 'सिद्धि विलगम' के नाम से एक कमरे के भवन में रहना।
1871	जून	'समरस शुद्ध सन्मार्ग सत्य ज्ञान सभै' या 'सत्य ज्ञान सभै' का वडलूर में निर्माण-कार्य प्रारंभ।
		मेट्टुकुप्पम स्थित अपने निवास से रामलिंग का इसके निर्माण तथा भोजनालय का निरीक्षण करना। धीरे-धीरे अपने में सिमटते हुए योग की कठिन साधना में लगना।
1872	11 जनवरी	रामलिंग द्वारा 'सन्मार्ग वेद पाठशाला' विद्यालय की योजना। पर योजना पूरी नहीं हो पायी।
		गद्य में चार 'सन्मार्ग विण्णप्पंगल' का लेखन।
	25 जनवरी	'सत्य ज्ञान सभै' का उद्घाटन। इसके उद्देश्यों पर रामलिंग द्वारा एक पुस्तिका का विमोचन।
		रामलिंग द्वारा 'तिरुवरुल मेयमोभी' (करुणा मार्ग के वचन) शीर्षक से एक प्रवचन।
	9 मार्च	भोजनालय में उनके व्यवहार पर क्षुब्ध होकर रामलिंग द्वारा शिष्यों को विरोध-पत्र जारी करना।
	18 अप्रैल	'अरुट् पेरुम ज्योति अहवल' की पूर्ति।
	18 जुलाई	'सत्य ज्ञान सभै' की कार्य-प्रणाली पर रामलिंग द्वारा पूर्ण एवं विस्तृत अनुदेश जारी करना।

	संस्था का नाम निम्नलिखित रुप से बदलना कि वे सभी धार्मिक मतों से अलग सच्चे मार्ग की उनकी धारणा का प्रतिनिधित्व करें :
	1. 'समरस वेद सन्मार्ग संगम' से 'समरस शुद्ध सन्मार्ग सत्य संगम ।'
	2. 'समरस वेद धर्मशालै' से 'समरस शुद्ध सन्मार्ग सत्य धर्मशालै ।'
25 नवंबर	'सिद्धि विलगम' तथा निश्शुल्क भोजनालय में अपने शिष्यों के व्यवहार से क्षुब्ध होकर विरोध-पत्र जारी करना ।
1873 22 अक्तूबर	'सिद्धि विलगम' में ध्वजारोहण (मनुष्य की आध्यात्मिक परिपक्वता के प्रतीक के रूप में) के अवसर पर 'पुरुपदेशम' देना । 'सत्य ज्ञान सभै' को बंद करना ।
नवंबर	प्रतीकात्मक दिये को अपने कमरे से बाहर रखना । लोगों को ध्यान लगाने तथा असीम करुणावान की प्राप्ति के लिए उसे माध्यम के रूप में प्रयोग करने का आदेश देकर अपने को कमरे में बंद कर लेना ।
1874 30 जनवरी	रामलिंग का स्वर्गवास ।

परिशिष्ट

रामलिंग की चार कविताएं[1]

कृपा की घड़ी

घड़ी आ गयी,
तुम्हारी कृपा की घड़ी।

हे पावन प्रभो !
सच कहता हूं मैं,
हे समस्त कल्याण के विधाता,
छोड़ता हूं सभी आडंबर,
और प्रतीक्षा करता हूं
तुम्हारी कृपा की घड़ी की।

चला गया हूं मैं
विवादों से
झगड़ों से परे,
शांत हो गयी है,
मेरे खून की गरमी।
हिंसा और कपट
त्याग दिया है मैंने—
आ गयी है घड़ी मेरी।

अनुष्ठान और कर्मकांड
त्याग दिये हैं मैंने,
वानर-से चंचल मन को,

1. कविताओं के शीर्षक अंग्रेजी और हिंदी अनुवादकों द्वारा दिये गये हैं, ये शीर्षक दोनों भाषाओं में अलग-अलग हैं।

किया है दमित मैंने,
जलाकर राख कर दिया है
अपने कर्मों को ।
इस प्रपंच के चमत्कार को
समझ लिया है मैंने,
आ गयी है घड़ी
तुम्हारी कृपा की !

क्रोध और लोभ
त्याग दिया है मैंने,
अहं की धूल
झाड़ दी है मैंने,
इच्छाओं को
फूंक दिया है मैंने,
व्यर्थ की बातों को
छोड़ दिया है मैंने
आ गयी है घड़ी
तुम्हारी कृपा की !

लो ! चट्टान-सा मन मेरा
पिघल चुका है अब
चाहता हूं
तुममें खो जाना ।
मेरा हृदय आ पहुंचा है
अपने आश्रम में
सच्चे प्रेम से आप्लावित—
प्रभु, घड़ी आ गयी है अब
प्रभु, आ गयी है घड़ी तुम्हारी कृपा की ।

ईश्वर से प्रेमी की अनबन

देखो,
आ गया है वह,
जिसके साथ कुछ हिसाब चुकाने हैं मुझे !

वह, जो प्रतिष्ठित है,

अलंकृत किया था, विवाह के जयमाल से
वह, अनंत का नर्तक
आ गया है।
उसने दिया था वचन,
कि आयेगा वापस, समीप मेरे,
बहुत लगा दी देर उसने—
चकित हूं मैं
किस युक्ति से
लौटा लाऊं उसे ?
अब आ गया है वह,
और खड़ा है वह वहां,
निर्लज्ज !
क्रीड़ा करता हुआ उस
शंख से,
जो दिया था मैंने उसे ।
जाओ,
बंद कर दो कपाट !
नहीं जाने दूंगा अब उसे ।

सहे हैं मैंने ताने और
अपयश,
विश्वास करके उस पर,
अब वह खड़ा है
निर्लज्ज मेरे सामने !
मैं जानता नहीं था
उसका छल-कपट !
चुकाई बड़ी कीमत मैंने
जाओ, बंद कर दो कपाट
नहीं जायेगा अब वह !

मेरे भोलेपन के वर्षों में
अपनी मुस्कान से जीतता रहा मुझे
और फिर छोड़कर चला गया !
अब आ गया है वह—

आभारी हूं कि वह आ गया है—
(वह अप्रतिम है)—
अब नहीं जायेगा छोड़कर मुझे—
जाओ, बंद कर दो कपाट !

उसके साथ यह झगड़ा
समाप्त नहीं होगा कभी,
प्रिय मेरे, स्नेह करो मुझसे
मित्र मेरे, मुझे तुम्हारी आवश्यकता है।

ईश्वर से याचना

अब भी न आयी दया ?—हे प्रभो,
निष्ठुर हो तुम कितने !
अनंत के नर्तक, सर्व कल्याणदाता,
हे सम्राट्—मेरे सम्राट्—
सुन लो मेरी पुकार !

कच्ची उम्र में अपनाया था तूने,
हे महान प्रभो, मेरे प्रभु,
सुन लो मेरी पुकार !

क्षमा किया था तूने तब,
अब याचक तेरी करुणा का,
याचक हूं—हां हूं—
सुन लो मेरी पुकार !

मैं नहीं जानता था अपने को
और दिया था तूने दुख मुझे
क्या यह सही है ?—सही है ?
सुन लो मेरी पुकार !

कृपा की थी तूने
अपनाया था मुझे !

हे अनादि अनंत प्रभो ! अनादि अनंत !
सुन लो मेरी पुकार !

नहीं सह सकता मैं
तुम्हारा निषेध
हे स्वामी—मेरे स्वामी !
सुन लो मेरी पुकार !

ईश्वर के प्रति प्रेम-रोग

आओ मेरे पास
हे नट-सम्राट्
आलिंगन करो मेरा !

हे विश्वात्मा, आलिंगन करो मेरा,
हे सर्वशक्तिमान, आलिंगन करो मेरा,
हे विश्वविवेक, आलिंगन करो मेरा,
हे सर्वशरण्य, आलिंगन करो मेरा,
हे, जगतप्रभो, आलिंगन करो मेरा,
पति मेरे, आलिंगन करो मेरा !

चाहा था, तुमने मुझे
आओ समीप मेरे।
पाया है तुमने अब,
आओ समीप मेरे।
इस एकाकार के समय
आओ समीप मेरे।
तुम जो जानते हो मुझे,
आओ समीप मेरे !
तुम जो ठीक से पढ़ते हो मुझे,
आओ समीप मेरे।
पोंछे जो तूने अश्रु मेरे
आओ समीप मेरे,
मेरे पति ! आओ समीप मेरे !

मैं चाहता हूं, तेरे समीप रहना,
बांध लो मुझे !
तुम्हारी कृपा समझती है सब
बांध लो मुझे !
अनाथ हूं मैं तेरे बिना
बांध लो मुझे !
संपूर्ण चेतना से पुकारता हूं तुम्हें,
बांध लो मुझे !
सच कहता हूं,
मैं पवित्र हूं, बांध लो मुझे !
मेरे भीतर निवास
करने वाले प्रभो, आलिंगन करो मेरा।
हे प्रभो, पति मेरे, आलिंगन करो मेरा !

□□

मुद्रक : शान प्रिंटर्स, शादहरा, दिल्ली-32